पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति स्मृति संग्रह

तरुण सीरीज़ नं० १५

रात का बाज़ार

[बँगला भाषा की चुनी हुई कहानियों का संग्रह]

अनुवादक

श्री 'खपुष्प', एम० ए०

पंडित ठाकुरदत्त मिश्र

प्रकाशक

तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक

कृष्णनन्दन प्रसाद

तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

प्रथमावृत्ति—जनवरी, १९४५

मूल्य एक रुपया

मुद्रक

भगनकृष्ण दीक्षित

दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

दो शब्द

यह बँगला भाषा की कुछ चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। संगृहीत कहानियाँ बँगला गल्प-साहित्य का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं, और न इस दृष्टिकोण से संग्रह तैयार ही किया गया है, लेकिन इतना अवश्य है कि इसमें नये-पुराने गल्पों का समावेश है, और यद्यपि बँगला के कुछ दूसरे प्रमुख और लोकप्रिय कथाकारों की कहानियाँ इसमें नहीं सम्मिलित हैं फिर भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे सर्व-सम्मानित और देवीप्रसाद राय चौधरी जैसे लब्ध-प्रतिष्ठ कलाकार और साहित्यिक की कृतियाँ दी गई हैं।

यह विवाद-रहित है कि बँगला भाषा और साहित्य देश की प्रमुख भाषा और साहित्यों में अधिक प्रगतिशील रही है, और है। इस भाषा ने वर्त्तमान भारत में सबसे पहले साहित्य, कला, ज्ञान और विज्ञान के गूढ़ और मार्मिक भावों को व्यक्त किया और राष्ट्रीय साहित्य का आदर्श भारतीय जनता के सामने रखा। इसने न केवल प्राचीन आदर्शों का समर्थन किया वरन् पाश्चात्य वातावरण के संपर्क के कारण बाहर से आये हुए भावों और विचारों को समझने और उनसे भारतीयता को समृद्धिशाली बनाने की चेष्टा की।

इस संग्रह के प्रकाशन में सुप्रसिद्ध कथाकार स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री देवीप्रसाद राय चौधरी, श्री नमिता मजुमदार, डाक्टर सत्यनारायण और श्री सनद्कुमार वंद्योपाध्याय के हम विशेष रूप से ऋणी हैं जिनकी रचनाएँ आधुनिक शैली और विचारों से ओतप्रोत हैं, उच्चकोटि की हैं, और भारतीय साहित्य को गौरवान्वित करती हैं।

—प्रकाशक

कहानियों की सूची

रात का बाज़ार

जाड़े की रात। एक बज चुके हैं। जाड़ा ऐसा कड़ाके का पड़ रहा है कि हाड़ से लेकर मज्जा तक जम जाने का उपक्रम होने लगा। फटे कोट पर पेवंद लगा हुआ गुंचट—दोनों सिरों को खींच कर सीने को ढँकने के फ़िराक़ में था। पर गुंचट लंबान में कम पड़ता था। दोपहर को एक 'डस्टबिन' में से उठा लिया था। पर उस वक़्त नाप कर देखना भूल गया था कि सारी देह उससे ढँक सकती है या नहीं। इस वक़्त बड़ी कोशिश करने पर भी दोनों सिरों को मिला न पाया। गुंचट न रबड़ है न पशमीना कि खींच-तान कर कुछ लंबा कर लिया जायगा। खैर, झल्ला कर यह बेकार कोशिश छोड़ दी और चितपुर रोड की ओर बढ़ चला।

गैस की बत्ती जल रही है, पर कुहासा इतना घना पड़ रहा था कि पास की चीज़ भी नहीं देखी जा सकती थी। दुकानें सब बन्द हो चुकी हैं, सिर्फ़ पानवाला दिखाई पड़ रहा है। वह जाग रहा है। उसका रोजगार सिर्फ़ पान बेचना भर ही तो है नहीं, जलसाघरों के सम्बन्ध में सदुपदेश देने में वह अद्वितीय है। उपयुक्त दक्षिणा पाते ही वह बता देता है कि किस घर में कौन जातीय नये प्राणी का आविर्भाव हुआ है। इधर के बाशिंदों का राई-रत्ती हाल वह उँगलियों पर गिन सकता है।

मारवाड़ी लोग पुण्य संचय करके ही जीवन बिताते हैं बिचारे। परकाल की सुव्यवस्था और सुविधाओं के लिए स्वर्गद्वारियों को इस क़दर घूस देते रहते हैं जिसकी की कोई हद नहीं। आज शाम होते ही इसी तरह के एक घूस की व्यवस्था हुई थी—पुत्र के विवाह के उपलक्ष में कँगलों का भोजन। मैं भी घूस पहुँचाने वालों में शरीक़ हो गया, यानी पत्तल बिछाकर सड़क के किनारे कँगलों की क़तार में बैठ गया। खाया भी था ख़ूब कस कर, परम परितोष के साथ।

भर पेट खाना मिलना मेरे जैसे प्राणी के लिए एक विलास ही समझिये। आहार के बाद ही आलस्य ने मुझे धर दबाया था। और फिर सच कहने में क्या डरना, बात यह है कि अपने दल के लोगों में ज़रा ऐयाश और आरामतलब, कुछ शिक्षित, कुछ मार्जित माना जाता हूँ। कम से कम मेरे वर्ग के लोग मुझे उक्त गुणों से सम्पन्न समझते हैं! तो ग़रज़ कि अपनी इस शोहरत पर मैं पानी नहीं फेरना चाहता था, और घूम-घूम कर डेढ़ हाथ चौड़ा एक रेक (मकान की कुर्सी के नीचे का खोखला स्थान) खोज ही निकाला। वहीं पर अपना नवाविष्कृत मूल्यवान चादर बिछाकर लेट रहा। काफ़ी गहरी नींद में था। स्वप्न देख रहा था—प्रिया ने मुझे गाढ़ आलिंगन किया है। स्वप्न का स्पर्श वास्तव में अनुभव करने लगा। नींद टूट गई। आँख खोल कर देखा। सचमुच कोई जीवित प्राणी ने मुझे दृढ़ आलिंगन-पाश में वद्ध कर रक्खा है। हाथ अकस्मात् उसके गालों से लग गया। सर्वनाश! गंडस्थलों पर मसृण मांस के स्पर्श-सुख का अनुभव तो नहीं हुआ! गाल इतने खुरदरे! पूरी आँख खोलकर देखा। जो मुझे प्रेम-मिवेदन कर रहे थे वह नारी नहीं, बल्कि दाढ़ी-मूँछों वाले कोई मर्द क़िस्म के आदमी थे। धींगा-धींगी कर उनके आलिंगन-पाश से किसी प्रकार मुक्त होते ही पता चला कि उनका खुला हुआ बायाँ हाथ ठंडा और गीला था। परीक्षा करने पर पता चला कि भले आदमी ने बड़े शौक से अपने बाएँ हाथ पर क़ै की थी। ताड़ी और अजीर्ण अन्न की उत्कट गंध से अस्थिर हो उठा। मन ही मन सोचा, यह कोई निम्नवर्ग का आदमी है, और ऐसों के मुँह लगने से कोई फ़ायदा नहीं, यह समझ उसे छोड़ उठकर खड़ा हो गया। उठ पड़ना तो आसान है, पर इतनी रात हाथ कहाँ धोता? बंबे भी बंद। हमारी अवस्था के आदमी को अगर उपस्थित बुद्धि न हो तो एक मुहूर्त काम न चले, चल पड़ा शाल धोने वाले की दूकान की तरफ़। रंग पक्का करने के लिए वे छत में भी शाल-दुशाले, रंगीन कपड़े वग़ैरह ओस में टाँग रखते हैं।

इस अंचल का कोना-कोना मेरा सुपरिचित है। दुकान के सामने पहुँच चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। विपद् की आशंका वैसी कुछ खास न जान पड़ी। रास्ते के ऊपर रंगीन साड़ियाँ, शाल वग़ैरह झूल रहे हैं; जो सामने मिला उसी से हाथ पोंछ डाला, फिर बड़ी सड़क की ओर घूम पड़ा। क्रै सूखनी शुरू हो रही है, हाथ में भी चमक पैदा हो रही है। हो पैदा चमक, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, किसी तरह बदबू अगर मिट सकती तो जान बचती। जिस मनुष्य ने प्रिया का स्थान अधिकार कर यह दुष्कीर्ति की थी उसका अनुसन्धान करने का प्रयोजन बोध मैंने नहीं किया, क्योंकि ऐसी घटना मैं नित्य ही देखा करता हूँ। सम्भव है, वह इस वक़्त तक कीचड़ से भरे किसी नाबदान में पड़ चुका हो।

उसकी बात सोचने से कोई लाभ नहीं। मैं फिर आगे बढ़ चला, क्योंकि चलना ही हमारा धर्म, हमारा पेशा और जीविका उपार्जन करने का अवलम्ब है।

चलते-चलते बीडन स्कायर पार हो एकदम वहीं पहुँच गया, जिसे लोग कहते हैं—रात का बाज़ार। यहाँ मुँह में बीड़ी भी अगर न हुई, तो मामला जमता नहीं; ठीक, जैसे कालीघाट में माथे पर रोड़ी बिना, या गंगा-स्नान कर लौटने वाले लोग चंदन बिना अधार्मिक समझे जाते हैं। बीड़ी वाले की दुकान पर से एक बंडल खिसका दूँ सो भी यहाँ मुश्किल, क्योंकि पुलिस वाले यहाँ हर वक़्त चौकन्ने रहते हैं। दूसरे का धन लें या न लें, हमारे ऐसे जीव को देखते ही ये चहेट लेते हैं। ठीक कह नहीं सकता क्यों, पर ये पुलिस वाले हमारे चक्षुशूल हैं, मैं कभी इन्हें पसन्द नहीं कर सका। पर हाँ तो सभी अपनी-अपनी घात में घूम रहे हैं—पाकेटमार, रहंकट, धप्पेबाज़, दलाल, पानवाला—सभी अपना-अपना ज़गार पहरेवालों की आँख में धूल झोंक कर चलाये जा रहे हैं। ौर फिर मुझी को क्यों एक बंडल बीड़ी खिसकाने पर चहेट लेंगे। ौर इस 'क्यों' का उत्तर ही कौन देगा। अर्थ-नीति का अनेक प्रकार

का भाष्य स्वदेशी लोग विदेशियों की नक़ल पर कर रहे हैं, उन्होंने हमारे ऐसे जीव की बात भी क्या कभी सोची है ? उन लो को दर्देसर हो रहा है खेती के लिए। खेती का ठीक इन्तज़ाम क जा कर वे ज़मींदार को चोट पहुँचाने के फ़िराक़ में हैं। इसके लिए वे दृढ़-संकल्प हैं। अरे बाबा ये जलसाघर अभी तक बचे हुए इन्हीं ख़ान्दानी रईसों की वजह से, और हम लोग बचे हुये हैं जलसाघरों में होने वाले भोग के प्राचुर्य के कारण। लोहावाला कमा कर बड़ा ख़िताब पा जाने पर भी भग्नांश का हिसाब क तब निमंत्रितों को खाना देता है। प्राचुर्य की गुंजाइश वहाँ नहीं परंपरागत दैन्य का प्रभाव और आवेष्ठनी उद्भूत प्रकृतिपाश कर वह कहाँ तक उदार हो सकता है ? हिसाब के बाहर खर्च ह ही कलेजा फट जायगा, और इधर परित्यक्त प्राचुर्य के अंश से लोग वंचित होंगे। मैं कहता हूँ खेतिहार भी ज़िन्दा रहे, ज़मीं भी ज़िन्दा रहे, हम लोगों को भी खाने को मिले।

यहाँ पर सिर्फ़ पहरेवाले ही जग रहे हों सो बात नहीं है। सभी सजग, सभी चंचल, सभी सचेष्ट, सभी सक्रिय हो रहे अपनी शक्ति से बाहर बहुधा। सब अपनी-अपनी ताक में, अप अपनी घात में घूम रहे हैं। कर्म-व्यस्तता की ओर से दिन का बाज़ार या शेयर मार्केट भी इसकी तुलना में तुच्छ है। रिक्शे व इधर से उधर सवारी लेकर दौड़ रहे हैं। सवारियों में से निसबल होकर लौट रहा है, कोई सर्वस्व देने के लिए दौड़ रहा है यहाँ घंटे पर घंटे ऐसी घटनायें होती रहती हैं, इसमें कोई नई नहीं है।

दो पैसे की बीड़ी ख़रीदने जा रहा था। पहरेवाले को देख ख़र्च को संयत कर लिया। एक साथ ही दो पैसे की बीड़ी ख़रीद देख वह कर्त्तव्यपरायण मनुष्य शुबहा कर बैठेगा कि मैंने किसी गाँठ काटी है। और संदेह कर के अगर क़ानून के मुताबिक़ कार्य करे तब तो हम लोग बच जायँ। हाजत में बास तो हमारे

भाग्य का विषय है, दोनों वक्त खाने को मिलेगा। पर हाजत में लेकर मनमाने कुछ हाथ जमा कर छोड़ देगा। यह क्यों बाबा? हम लोग क्या बेकार हैं? गाँठ काटना भी ठीक तरीक़े से सीखने के लिए विधवत् साधना की आवश्यकता है।

और फिर वह भला आदमी मेरी ही ओर आ रहा है। अब और क्या करता, एक पैसा निकाल कर पान वाले से अधेले की बीड़ी और अधेले के पान की फ़र्मायश की।

पान मुँह में भर कर बीड़ी जलाई। ख़ूब जटा साले ने। इतनी बड़ी दुकान, अधेले की बीड़ी में भी ठगने का लोभ नहीं संवरण कर सका। नीच इसी को कहते हैं, और क्या नीच पेड़ में फलते थोड़े ही हैं। मुझे भी ग़ुस्सा होने का अधिकार है। पैसा देकर चीज़ ख़रीदी है, ठगने से ही क्या मैं मान जाऊँगा! पहरावाले और पान वाले में इस वक्त मज़ाक चल रहा था। जिस उत्साह से ग़ुस्से की प्रगट करने की बात सोची थी, वह नहीं हुआ। अत्यन्त विनीत भाव से कहा, उस्ताद ये बीड़ी कैसी तो है, ज़रा बदल देते।

अभियोग सुन कर एक गड्डी पान पानी में डुबोकर उसका छींटा मेरे मुँह पर मारा। उस भयानक सर्दी में ठंडे पानी का छींटा मुँह पर काँटों की तरह बिंध गया। मेरे अभियोग की चरम मीमांसा थी यह। शिक्षित की मर्यादा वह मूर्ख क्या समझते? लिहाज़ा चुपचाप, बिना एक शब्द कहे उस स्थान को परित्याग किया। मैं जानता हूँ मेरे इस आत्म-संयम का दृष्टान्त किसी इतिहास में लिपिबद्ध नहीं होगा, किन्तु सद्गुणों के सुविचार होने की सम्भावना होती तो कहता, मैं धर्म प्रचारकों की अपेक्षा कम किस माने में? व्यक्तिगत कोई स्वतंत्र विचारधारा के प्रचार के लिए मैंने कौन सा कष्ट नहीं स्वीकार किया। अपने दलवालों का व्यवसाय जीवित रखने के लिए कितनी बार अपनी जान जोखिम में डाल चुका हूँ, मार खाकर बेहोश तक हो गया हूँ, सिर्फ़ जेल नहीं गया।

विभिन्न धर्मावलंबियों के मत सैकड़ों वर्ष से अपनी वंशवृद्धि

करते आ रहे हैं। घटना-चक्र के बल से विशेष-विशेष धर्म मु मनुष्यों की संख्या बढ़ती चली जा रही है। मान लीजिये मेरे द के लोगों की संख्या कम है, सिर्फ़ इने-गिने कुछ लोग हैं, पर कौ कह सकता है भविष्य में मेरे सरीखे, फ़ाक़ेमस्ती की संख्या विरा रूप नहीं धारण कर लेगी? कौन कह सकता है कि भद्रवेशी नीति वादी लोगों में से सैकड़ा पीछे कम से कम दस आदमी मेरी ही तर गिरह काटने की बात नहीं सोच रहे हैं। प्रगट रूप से भले ही व हमारे दल में न शामिल हों पर हैं वे असल में गिरहकट ही हमारी ही तरह के कुछ लोग बेचैन रहें तो धर्मात्मा लोग महापुरु किस तरह प्रमाणित होंगे। अंधकार के अस्तित्व के कारण ही त प्रकाश की विशेषता स्वीकार की जाती है। अतः धर्मात्मा लोगों क भाँति ही हमें भी जगत में बास करने का अधिकार है।

यह ऊँचे दर्जे की दलीलें सोचता हुआ मन ही मन अच्छी खासी आत्म-तुष्टि का अनुभव कर रहा था। पैदल काफ़ी चल चुका था और अब थकान के कारण शरीर गरम हो उठा था। गुंचट की चादर अब कंधे पर डाल दी।

पर वहाँ डालना था कि दूसरे ही क्षण वह वहाँ से अपसारित हो गया, बाजीगर के खेल की तरह। समझ गया कोई जादू हो गया। इस रास्ते में नाना स्तर के, नाना दल के ऐंद्रजालिक छद्मवेश में घूमते रहते हैं। जल्दी से जेब टटोली कि पैसे तो सही सलामत हैं। पाकेट में हाथ डालने के साथ ही पीछे मुड़ा। देखा मेरी मूल्यवान चादर एक गलितकुष्ट के रोगी के क़ब्ज़े में जा पहुँचा है। अपहृत वस्तु उसके हाथ से कोई छीन नहीं सकता यह वह बख़ूबी समझता था। जिस हाथ से उसने चादर हटाई थी उसमें अब हथेली छोड़ कर और कुछ नहीं बचा है। उँगलियाँ सब गलकर गिर चुकी हैं। लकड़ी के सहारे जैसे कोई टाँगा हुआ कपड़ा उतारा जाता है, उसी तरीक़े से उसने चादर हटाई थी। उसे कुछ क्षण निरीक्षण करता

रहा। पर वह एकदम बेफ़िकर था। मार का डर भी उसे नहीं था। क्योंकि उसे हाथ से मारने की हिम्मत कौन कर सकता था ?

मैं कुछ नहीं बोला। क्योंकि कुछ कहने-सुनने या करने-धरने का अब था ही क्या ? मैं तो शीत की ताड़ना से कुछ बचा हुआ भी हूँ, पर मेरी चादर का वर्तमान स्वामी तो प्रायः दिगंबर ही था। जाड़े से ठिठुरा हुआ, ठक्-ठक् काँप रहा था, मारात्मक शीत से उसकी नंगी खाल और भी फटी जा रही थी।

उसने मेरे सामने ही मेरी चादर से अपनी देह ढँक ली। कंकाल-सार शरीर पूरी ढँक लेने में कोई असुविधा नहीं हुई। मेरे प्रति संतुष्ट हो जरा हँसकर चल दिया। उस हँसी द्वारा शायद उसने मुझे समझाना चाहा था कि चादर का प्रयोजन तुम्हारी अपेक्षा मुझे कहीं ज्यादा है। तुम्हारे लिए वह शौक़ की चीज़ थी पर मेरे लिए बचे रहने का अवलंबन है, मेरा चमड़ा फटा हुआ जो है।

चादर के साथ ऐंद्रजालिक अंतर्ध्यान हो गया। थकावट महसूस कर रहा था। पसंद के माफ़िक कोई रैक की तलाश में था। मेरी शौकीन तबीयत ही अक्सर मेरे जीवन-धारण में बाधा की तरह खड़ी हो जाया करती थी। जहाँ-तहाँ सो रहना तो दूर की बात, बैठकर जरा सुस्ताने में भी असुविधा होती है। मूर्ख और अभद्र का सान्निध्य मुझे असह्य है। अतः एक ऐसा स्थान खोज निकालना होगा जहाँ ऊपर कहे हुये लोगों का आविर्भाव असंभव नहीं तो अल्प संभव अवश्य हो। सारा जीवन तलाश में हूँ, पर कहाँ मिल सका ऐसा स्थान ?

बड़ी देर बाद एक ऐसी जगह मिल गई, ग़ज़ब की जगह, छोटी होने पर भी ग़ज़ब की थी वह। एकदम निराली। बग़ल के कमरे में से बोतल खुलने की आवाज़ आ रही थी। सामने वाले कोठे पर से हारमोनियम की पों-पों आवाज़ आ रहा था। बैठे हुये समझदारों की विकट 'वाह' 'वाह' के शोर से गाने की आवाज़ तो सुनाई ही नहीं पड़ती थी। फ़ुटबॉल के मैच में गोल होने के समय जो हुल्लड़ उठता है ठीक उसी ढंग का कोलाहल जमा हुआ था।

चारों ओर एक बार देख लिया। आतंक का कोई कारण नज़र नहीं आया। एक घरेलू कुत्ता पास में था, उसे एक लात जमाकर भगा दिया। अगर न भागता तो भागना मुझे ही पड़ता। मुझे नींद आते ही बदन गरम करने के लिए वह मुझसे सट कर लेटता। अब बेफ़िक्र होकर लेटा।

फ़र्श बर्फ़ की तरह ठंडी थी। यह तो बड़ी ग़लती कर बैठा! कुत्ते भगाने की जगह अगर प्यार कर कुछ देर वहीं लिटाये रखता तो फ़र्श काफ़ी गरम हो जाती। फ़र्श गरम कर लेने के बाद लात मारना बुद्धिमानी का काम होता! खैर, भूल जब कर ही बैठा तो पश्चात्ताप से लाभ क्या? सोचा लेट जाऊँ, अपने शरीर के उत्ताप से ही फ़र्श गरम करूँ। पर लेटते ही जो छींक ऐसी लगेगी इसी डर से कुछ देर बैठा रहा। नींद से आँख झँपी जा रही है। ठंढ की परवाह न कर लेट गया।

थोड़ी ही देर में नींद मुझे दूसरे राज्य में ले गई। मानों इंद्रसभा हो। झाड़-फ़ानूस की रोशनी से कमरा जगमगा रहा है। फ़र्श पर एक विराट् कालीन बिछी हुई है। श्रोता-मण्डली में से कुछ आधे लेटे आधे बैठे, कुछ पेट के बल लेटे हुए और कुछ बिलकुल सोये हुए। बाई जी ने नृत्य-गीत से सब को मुग्ध कर रक्खा है। मैं ठीक निमंत्रित न होने पर भी एक कोने खड़ा गाना सुन रहा था। बाई जी का नृत्य देखकर मन में यह भी तरंग उठ रही थी कि कभी अगर रुपया हाथ लगा तो बाई जी के अंग-स्पर्श कर जीवन सार्थक करूँगा। क्या अपरूप गठन है बाई जी के अंग-प्रत्यंगों की। प्रौढ़त्व पार कर चुका हूँ पर अभी तक किसी स्त्री-शरीर के स्पर्श करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। पता नहीं स्त्री के अंग-स्पर्श से पुरुषों को क्या अनुपम सुख मिलता है। स्त्रियों को मैं माता या भगिनी रूप से नहीं देखता। पता नहीं क्यों, नीतिवादी लोगों के इस संस्कार को एक विराट् प्रवंचना छोड़ और कुछ नहीं समझ पाता। स्त्री-भोग की लालसा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है, किन्तु कभी उसको चरितार्थ नहीं

कर पाया। मानसिक यंत्रणा दारुण हो उठी है, सहन करने के लिए बाध्य हूँ। बहुत-बहुत दिन पहले एक अंध युवती मिली थी, मेरी ही तरह ख़ानेबदोश। उसका मालिक उसे छोड़ कर चला गया था, सारा शरीर गंदे फोड़ों से व्याप्त हो गया था इसलिए। शारीरिक व्यवधान बक़रार रखता हुआ कुछ दिन उसके साथ घूमा था। पर मेरी रुचि परिमार्जित है, अंत में उसे छोड़ ही देना पड़ा। शायद वह अब मर चुकी है।

नाचघर में मैं खड़ा था, मेरी वेश-भूषा देख पास के लोग मेरी ख़ातिर हटे जा रहे थे। मैं जहाँ कहीं भी किसी के पास खड़ा होता हूँ तो वह हटकर फ़ासले पर हो जाता है। उस जलसाघर में निमंत्रितों के आचरण से विस्मित नहीं हुआ, क्योंकि यह सम्मान मुझे दीर्घ-काल से मिलता आ रहा है। वरन् किसी के पास खड़े होने पर अगर वह न हटा तभी मुझे अचंभा होता है।

बीच-बीच में बाई जी के नौकर गुलाबपाश से गुलाब-जल छिड़क रहे थे। दो-चार बूँदें मेरे ऊपर भी आ पड़ी थीं, कुछ और पड़तीं तो अच्छा होता, कोट की बदबू ही ज़रा कम होती। परिमार्जित रुचि की चोट खाया हुआ हूँ, बोला, बस, बस, काफ़ी है। मेरी बात सुन कर नौकर अवाक् होकर मेरा 'मुँह' ताकता रहा। और भी जाने क्या-क्या घटनायें देखीं, ठीक ख़याल नहीं है।

यकायक एक चीख़ सुनकर नींद उचट गई। ऊपर वाले कमरे से एक साथ ही कई औरतें चीख़ रही थीं, ख़ून कर डाला, मार डाला, ख़ूनी, पुलीस बुलाओ। एकदम ख़ून—पुलिस—पुलिस—पुलिस। इस शोर-गुल का सहज अर्थ समझ में आते ही मैं रैक छोड़ कर सड़क पर उतर पड़ा। यह ख़ून का व्यापार भी रात के बाज़ार की नित्य की घटना कही जा सकती है। विस्मित नहीं हुआ, सिर्फ़ गवाह बनाये जाने की डर से सड़क थाम ली थी। रास्ते पर आते ही पीछे मुड़कर एक बार भी न देख सीधा सामने चलने लगा, क्योंकि चलना ही है हमारा धर्म, हमारा पेशा, हमारी जीविका उपार्जन का अवलंबन।

वह्निशिखा

[आधुनिकतम स्टाइल]

इस जगत् में कभी-कभी ऐसे लोग भी पैदा होते हैं जो दूसरों के लिए तो नहीं हाँ, यहाँ तक कि अपने लिए भी नहीं। मानो एक दीर्घ अग्नि-स्फुलिंग। और फिर दुनियाँ का अजब दस्तूर यह है कि ऐसे ही लोगों के लिए सब को फ़िक्र होती है।

ठीक ऐसी ही लड़की है वह—शिखा।

श्याम और कृष्ण के बीचोबीच का है उसका रंग, भार बाहुल्य-हीन स्वच्छ देह, द्रुतगति, ऊँची आवाज़, तीक्ष्ण तर्क-वितर्क, बुद्धि के प्राचुर्य तथा उन्मुक्त हास्य में एकदम झलमल। कालेज में, क्लब में, सभा-भवन में उसका आसन सबसे आगे।

मित्र-मंडली में भक्तवर्ग ने उसका नया नामकरण किया है—वह्नि-शिखा।

माँ को बड़ी फ़िक्र है इस लड़की को लेकर। पुरुष से भी जो लड़की हो उठी है दृढ़तर, उसकी दृढ़ता को कोमल कर सकने वाला पुरुष मिलना क्या संभव होगा? कितने लड़के याचना कर लौट गये—उसका हृदय कोई छू सका हो ऐसा इंगित अभी तक नहीं मिला।

अरण्यानी कहा करती है— मौसी, क्यों इतनी फ़िक्र करती हो। कितना गर्व है हम लोगों को उस पर। कितना कठिन है उसका मन! जानती हो लड़के क्या कहते हैं? कहते हैं, वह्नि, तुम्हारे विमुख-मुख की अग्नि में हम लोग प्रस्तुत होंगे।

नहीं, नहीं, बेटी यह अच्छा नहीं है। इतना कठिन होना अच्छा नहीं है। मुझे डर यह लगता है कि इस लड़की का दिल जिस दिन टूटेगा उस दिन यह अपने हाथ में कुछ नहीं रक्खेगी, चूर्ण-विचूर्ण हो जाने पर भी कहीं से कोई आवाज़ नहीं होगी।

उस दिन चैत महीने की संध्या थी। बसंत की मादक वायु के

साथ आम के बौरों की व्याकुल सुरभि का सुखद मिलन हो रहा था। अतीन आया, बोला, वह्नि, घूमने चल रही हो ?

मेरे पास समय नहीं है।

ऐसा कौन सा काम है ?

लिटरेरी क्लब में मीटिंग है, मुझे जबरन् उसका प्रेसिडेंड बना दिया है।

अतीन हँसा वह्नि, तुम्हारी यह बात जरा जँची नहीं। जबरन् तुमसे कोई कुछ करा सके ऐसी शक्ति किसमें ?

झुण्ड के झुण्ड सब कमरे में घुस आये, बोले—तुम्हारे बिना काम ही नहीं चलेगा।

क्या खूब! सब के सब आ के धरना दिए होंगे तब कहीं। अच्छा मैं अक्सर यह भूल जाता हूँ, तुम अकेले किसी की नहीं, तुम सबकी हो। वहाँ इस अभागे अतीन और लिटरेरी एसेंबली में कोई फ़र्क नहीं। अच्छा वह्नि, हृदय का प्रयोजन क्या नहीं है तुमको ?

मेरा अपना हृदय ही काफ़ी है। अतीन, तुम आजकल कविता लिखते हो क्या ?

ऐसा क्यों कह रही हो ? और फिर कविता क्या बुरी चीज है ?

नहीं। पर सचमुच कविता लिखो, तो; भाव में गद्गद् हो, किसी लड़की का मुँह देख कर नहीं, और यह भी अगर करो तो याद रक्खो वह लड़की मैं नहीं हूँ।

कठिन है तुम्हारा मन, उससे भी कठिन है तुम्हारा यह याद दिलाना।

शिखा ने घड़ी देख कर कहा—वक़्त हो चला। सात बजे मीटिंग शुरू है।

संगी हो सकता हूँ ?

हो सकते हो; पर ज़रूरत नहीं है उसकी।

तो रहने दो।

अतीन आगे बढ़ आया—वह्नि, वायदा करो !

काहे का ?

एक दिन समय दोगी मुझको।

व्यस्त हो काग़ज़-पत्तर सँभालती हुई बोली—दूँगी।

कब, कल ?

हाँ कल ही।

नहीं चैत की पूर्णिमा को।

शिखा हँस पड़ी—अच्छा, वायदा करती हूँ।

मन में वह ठीक समझती है, कामना कर-कर के जो लौट गये हैं उनमें यह एक और नम्बर बढ़ा।

फ़ाइल और दो-एक कापियाँ लेकर शिखा निकल पड़ी, चौखट लाँघ दरवाज़े के बाहर हो पड़ी!

अविन्यस्त और रूखे हैं उसके बाल। सँवारने में कभी ध्यान नहीं दिया। वह खद्दर की साड़ी लापरवाही से लपेटी हुई जान पड़ती है। आँचल पावों तक झूल रहा है। बाहर जाते समय साड़ी बदलने की ज़रूरत नहीं होती उसको, अपने मुख के प्रति नहीं है कोई औत्सुक्य अथवा मोह, इसी से हाथ की पहुँच में कहीं देख नहीं पड़ता शीशा।

अतीन उसके द्रुत चले जाने को देखता रह जाता है।

चुपचाप अतीन के बग़ल में बैठी हुई वह्नि यकायक बोल उठी, अतीन, अब लौटना चाहिये, काम है।

वह्नि, काम की बात आज रहने दो। आज का दिन मुझे दिया तो उदारता के साथ दो, कंजूसी के साथ नहीं।

तुम्हें मालूम है, मैं चुपचाप बैठी नहीं रह सकती।

चुप रहने की क्या ज़रूरत।

और जो कहूँगी वह होगी काम की बात; तुम्हारी कविता से उसका कोई मेल नहीं होगा यह तय है। इसी से चुप रहने में सब से बड़ा फ़ायदा यह है कि जो लोग बना सकते हैं वह बनाते रहते हैं—पर वह मौक़ा मिलने का नहीं मेरे साथ।

जानता हूँ वह्नि, तुम्हें बनाने की मूर्खता भगवान करे मुझमें कभी न आवे। क्यों, चुप क्यों हो रही ? जो कहने को हो कह डालो, सिर्फ काम का बहाना कर लौटने का नाम मत लो, तुम्हारे पाँव पड़ूँ।

शिखा तब भी चुप रही। उसका इस प्रकार निश्क्रिय निर्वाक होना अनहोनी की भाँति ही असह्य था।

अतीन बोला—अच्छा वह्नि, सिर्फ़ वायदे का ख्याल करके ही आज आई हो शायद, इसी से चुपचाप बैठी हो। जैसे मन नहीं है तुम्हारे।

शिखा ने हँस कर कहा—ओ हो, कवि जी, इतने उतावले न हो वह क्या इतना आसान है।

हाँ है आसान। आवेग से अतीन का स्वर काँपने लगा, यकायक शिखा के दोनों हाथ अपने हाथों से दबा बैठा, मुँह ऊपर उठा कर बोल उठा, दुर्वह हो उठा अपना मन अकेले ढो सकने का भार। वह्नि बात सुनो, ख़ुश होकर मेरी ओर देखो—

शिखा जोर से हँस पड़ी—आकाश कँपा देने वाली पुरुषों की सी हँसी। हाथ छुड़ा कर उठ खड़ी हुई।

आहत हो अतीन ने कहा—दया भी क्या नहीं है तुम्हारे मन में ?

आँखें डबडबा आईं उसकी।

अतीन याद रक्खो, दया करने को जो लड़कियाँ दीवानी रहती है उनमें मैं नहीं हूँ।

ऐसी लड़की की ज़िद भी एक दिन टूटी।

× × ×

अतीन को भी देखा है आजकल ? कल्याणी ने कहा। चलता ऐसा है मानो अगाध जल में चल रहा हो, भले आदमी ने धोखे से अनजानी चट्टान से टकरा कर अपना सर फोड़ लिया है !

अरण्यानी बोली—भूल, तुम भूल रही हो कल्यानी, अनजानी नहीं; जानी हुई चट्टान से जान बूझकर अपना सर टकराया है अतीन

ने। कल्यानी ऐसा ही होता है दुनिया में, लोग जान-बूझकर अपने सर फोड़ते हैं, पर तो भी कल्पना से बाज़ नहीं आते।

उस दिन जाकर देखती क्या हूँ मानो समूचे मुँह पर अँधेरा छाया हुआ है। बोली—अतीन, इतने चुपचाप क्यों ? जवाब दिया—देख आया, आँधी के सूखे पत्तों की तरह सब उड़े जा रहे हैं उसकी ओर, जनता की भाँति, उसके अकेले रहने का कहीं कोई अर्थ नहीं है। उसके अन्तस्तल की बात समझ में आ गई।

अरण्यानी की आँखें भर आईं—बोली, वह्नि को जिन लोगों ने कामना की है उनका दुर्भाग्य है। किन्तु आश्चर्य यह है कल्यानी कि ऐसी लड़की भी हारी।

वह्नि की तरह लड़कियों को तो इस तरह उदास नहीं देखा जाता।

तो सुनो, अरण्यानी ने कहा—बताती हूँ।

उस दिन लड़कों में तहलका सा मच गया। शचीन ने कहा—सामने वाले उस छोटे मकान में जो आये हैं वे बड़े कल्चर्ड हैं, यूनिवर्सिटी की चौखटें पार हुये हैं सब के आगे-आगे, द्वितीय को बहुत पीछे रखते हुये। समुद्र के उस पार से सरस्वती के अपने हाथ का दिया हुआ प्रसाद लेकर जब लौटे तो ऐसे योग्यतर आदमी को अपनाने के लिए देश की यूनिवर्सिटियों में होड़ पड़ गई। पर उनका भी कैसा तो मन है, किसी को नहीं दिया साल्य, अपना स्वतंत्र चल रहा है स्वाध्याय और फिर फ़ुरसत मिलने पर बाग़वानी। हृदय के मध्य में इन दो रसस्रोतों का मिलन हुआ।

अशोक ने कहा, यह तो डरा दिया तुम लोगों ने ! ऐसा आदमी यदि मिल जाय तो हम लोगों का गौरव बढ़ जायगा। पर उसे हमारे दल में खींचेगा कौन ?

शचीन ने कहा—पर यह शायद संभव न होगा। दल की तो बात छोड़ो, भीड़ भाड़ में कभी उसका जी लगता नहीं देखा गया।

वृक्ष की भाँति है मन का बल उसका। अपने जड़-पत्तों के विस्तार और प्राचुर्य में स्वयं संपूर्ण— विनायक ने कहा।

ठीक कहते हो।

रहने दो अपनी ये बातें उसे ठीक कर सकेगी हम लोगों की वह्नि, ताव में आकर कहा दीपंकर ने।

लड़के व्यस्त हो उठे, जा के घेरा वह्नि को—नहीं, तुम्हें यह करना ही पड़ेगा, 'ना' मत करो।

उसने कहा—अच्छा।

मुझसे बोली—तुम भी चलो अरण्य।

नवीन गृह में नवीन उत्साह से बगीचे के काम में लगे थे, बोले—पहचान तो नहीं रहा हूँ!

वह्नि दीप्त हो उठी, हम लोग आ रही हैं 'अनागत आलोक-संधानी' से। सामने वाले मकान में हमारी सभा बैठती है, वहीं है हमारा कार्यालय।

देश को सुन्दर बना कर जो संपूर्ण करेंगे ऐसों ने उस आगामी कल, उसी आगामी भविष्यत् को दीप्त करने का भार हम लोगों ने अपने ऊपर लिया है।

नया आया हूँ, यहाँ की कोई खबर नहीं जानता।

बेंत के दो छोटे मोढ़े उन्होंने बढ़ा दिये। वह्नि ने कहा—कुछ काम है आप से।

क्या काम ?

हम लोगों की समिति की सदस्य-तालिका में नाम लिखना होगा आपको।

मैं डरी, धीरे से मैंने जोड़ दिया—बड़ी खुशी होगी हम लोगों को।

बोले—समय जो नहीं मिल सकेगा।

वह्नि ने जोर देकर कहा—समय मिलेगा नहीं क्यों ? इस काम में क्या आपकी रुचि नहीं है ? हम लोगों ने तो सुनाया है।

है तो, शायद, पर सदस्य-संख्या बढ़ाने वाले काम में उत्साह नहीं है।

मुँह खिल उठा प्रशांत हँसी से। जलने लगीं वह्नि की आँखें—क्या उत्सुकता भी नहीं है मन में? क्या आप देखना नहीं पसंद करेंगे कितनी निर्भीकता से हमारा काम चल रहा है, किस सत्य के बंधन में हम लोग बंधे हैं?

देखूँगा क्यों नहीं, समय मिलते ही देखूगा।

और तो भी नाम देने में आपको आपत्ति है?

हाँ है। क्षमा कीजियेगा मुझे।

सारी देह थर-थर काँप उठी, कठोर हो गया वह्नि का मुख, मानो भीतर के अपमान-बोध से अभी चूर-चूर हो जायगी। काँपते कंठस्वर में शुष्क नेत्रों की अग्नि मिलाती हुई बोली—मैं चली!

वह हाथ जोड़कर बोले—अच्छा, नमस्कार!

वह्नि की क़िस्मत फूट गई। इस तरह मुँह की खाकर कभी न लौटी थी वह। यही संताप उसे खाये डाल रहा है। उसके मन की एक ज़िद है—हार मनवा कर तब छोड़ेगी। किन्तु कठिन को तोड़ना दुःसाध्य होने पर भी साध्य है, पर ऐसे कठोर, साथ ही प्रशांत, को तोड़ेगी काहे से? यह तो प्रशांत है। इसी से हार मनाने जाकर ख़ुद हारकर लौटी। टूटने पर जो लड़कियाँ रो नहीं सकतीं वही है दशा उसकी। दूने तेज से काम में लग गई है। मीटिंग पर मीटिंग हो रही है। मानव-समाज का दुख-दारिद्रय दूर करने लिए वेग से पिल पड़ी।

शिखरेश्वर की आँखों के सामने हज़ार पावर की बत्ती जलने लगी। मन में भावना उठी। यह तो तेज नहीं है, यह तो रुलाई का दूसरा रूप है। पर लड़के और दीप्त हो उठे, शचीन को डाँट कर बोले, रहने दो उनका कल्चर!

इसके बाद?—कल्यानी ने पूँछा।

उसके बाद एक घटना हुई।

हम लोगों की समिति की एक शाखा का काम चल रहा था निरक्षरता निवारण के निमित्त—स्कूल, नाइट-स्कूल, और लाइब्रेरी में। उसी का एक छात्र था एक अनाथ विधवा का लड़का। बड़ी तीक्ष्ण थी उसकी बुद्धि, हम लोग चकित हो जाते। यकायक एक दिन खबर आई, छात्र ने हम लोगों से विदा ले ली। मामल क्या है पता लगाने पर मालूम हुआ, वह लड़का पहुँचा शिखरेश्वर के घर; अब उन्हीं की देख-रेख में रह रहा है।

लड़के बिगड़ उठे, घर पर चढ़ाई करके कह आए—यह बड़ा अन्याय है।

शिखरेश्वर बोले—इसका जवाब बाद में देंगे।

वह्नि बैठकर कुछ लिख रही थी, मैं बगल वाले कमरे में था, इसी समय आए शिखरेश्वर। चौंक पड़ी वह्नि—यह क्या, यहा!

कुछ बात करनी है।

हमारे उस लड़के को ले गए बरगला कर। क्या और एकाध लेने आए हैं? रूखा था उसका कंठ-स्वर।

शिखरेश्वर ने दोनों आँखें उसके मुख पर स्थिर कर दीं, क्षुब्ध कंठ से बोले—तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनूँगा, यह आशा नहीं थी।

शांत होगई वह्नि, बोली—कहिये अपनी बात।

मालूम नहीं था कि वह लड़का तुम लोगों की समिति के हाथ में है। विधवा का मृत्युकाल जब उपस्थित हुआ तो मुझे बुलवा भेजा। ठीक कह नहीं सकता, तुम लोगों के काम से न जाने उसे क्या डर था। रोती हुई बोली—मेरे लड़के का भार लेना होगा। अंतकाल पर मैंने उसे वचन दिया था, संपूर्ण भार मैं लूँगा उसका।

तो अभी क्या करना होगा?

मेरे सत्य की रक्षा करो।

आरक्त होते हुए मुख के साथ मानो उसकी छाती धड़कने

२

लगी। इतने लोगों के होते हुए शिखरेश्वर ने उसी पर निर्भर किया, इतना भरोसा किया, उसका यह बात वह किसी तरह भूल नहीं सकी।

वह्नि की बुद्धि भी हार मान गई। वह यह समझ न सकी कि समिति वाले और सब तो केवल दशमलव थे, पूरी एक कोई थी तो वही एक। भीतर वाले सत्य को आविष्कार करने जाकर काँपने लगा उसका कंठस्वर, बोली—यही होगा।

और शिखरेश्वर ने कहा—तुम्हारी समिति से विरोध हुआ है, ऐसी बात कभी मन में भी न आवे, और इसीलिए एक काम और करना होगा तुम्हें।

क्या? वह्नि ने कहा।

तुम्हारी सदस्य-तालिका में मेरा नाम लिख लेना होगा।

जान पड़ा शायद वह्नि का गला रुँध गया। बोली—अच्छा!

नमस्कार कर चुकने पर शिखरेश्वर चले आए बाहर। जहाँ तक दिखाई पड़े वह्नि देखती रही, उसके बाद टेबिल पर पोथी-पत्तर की आड़ में सिर छिपाया उसने, समस्त देह को झुका कर। पास आकर देखती हूँ उसकी देह काँप-काँप कर फूल उठ रही है। क्या आश्चर्य है! मैं बोली—वह्नि! यह क्या!

मुँह न उठाकर ही रुँधे गले से बोली—चुप, चुप, अरण्य चुप रहो।

× × ×

इसके बाद फिर कोई बाँध नहीं रहा। आदमी जब अपने ही हाथों अपने को रंजित करने का भार ग्रहण करता है तब कोई हिसाब नहीं रह जाता। शिखा में भी यह बेहिसाबी आई। मन में किसी बात का अभाव नहीं रह गया।

बीच-बीच में जब शिखरेश्वर के साथ समागम होता है, शिखा सुन्दर हो उठती है, मुँह लावण्य से भर उठता है, आँख की पलकें मानो एक दूसरे से मिल जाना चाहती हैं, मन ही मन कहती रहती

है, अब हुआ आविर्भाव, अब हुआ। पाँव की आहट सुनते ही छाती धड़क उठती है, चले जाने के समय मन उदास हो उठता है।

इतने दिन बाद छोटा हरा वृंत कली के भार से नत हुआ।

इसी तरह कई महीने कटे। लड़कियों ने इंगित से जान लिया। लड़कों में जान सका सिर्फ़ एक शचीन।

अरण्यानी को बुलाकर उसने कहा—यह तो ठीक नहीं हुआ।

मैं क्या कर सकती हूँ ?

उसको वाकिफ़ कर दो—शचीन ने कहा।

वह्नि !

आओ अरण्य, आओ।

कवि अगर होता तो सृष्टि कर सकती। निष्फल हुई यह संध्या।

वह्नि, यह नया राग सुन रही हूँ तुम्हारे गले से।

मेरा आकाश-लोक नई सृष्टि की कामना से लाल हो उठा है।

अरण्य, आज अतीत की याद आ रही है।

अगर बुलाओ उसे तो वह तुरन्त आकर हाज़िर होगा।

ना ना, रहने दो। बुलाकर उसे दुख ही दे सकती हूँ। उसे कठोर दुख दिया है मैंने।

उसे याद रखने की नई सृष्टि की रचना कर रही हो मन ही मन।

शिखा हँसी स्निग्ध, मानो कह रही हो—ठीक कहती हो।

किन्तु वह्नि एक बात याद दिलानी पड़ी। कठोर जब तुम थीं, केवल आघात देती आ रही हो, आज कल्पना से ऐसी सृष्टि कर रही हो कि डर मालूम हो रहा है। जान पड़ता है परदे का अपर-पार्श्व सामने आ रहा है।

अरण्य, तुम डर रही हो क्यों ? यह क्या कोरी कल्पना ही है ? भी ऐसा लगता है कि तुम कुछ जानती हो, छिपाना मत, बताओ—

नहीं, छिपाऊँगी नहीं; अच्छा सुनो—

शिखरेश्वर की उमर जब कम थी, यानी यौवन के प्रारम्भ में ही उन्होंने एक धक्का खाया था। बात कुछ बहुत वैसी नहीं थी, ऐसा तो होता ही रहता है। पर उनके नजदीक इसका और ही असर हुआ। बोले, यही पहला और यही आखिरी। कितनी लड़कियों की क़िस्मत फूटी, रो-रोकर लौट गईं, पर उनका जी न पिघला। इसी से कहती हूँ, वह्नि, अब भी लौटने का समय अगर हो तो लौट आवो; इस तरह के निष्ठुर पत्थर पर अपना सर्वस्व न टकराओ।

विवर्ण हो उठा शिखा का मुख, मानो पाँव तले से जमीन खिसक गई। सिर्फ़ यही बोली— अरण्य मुझे अकेली रहने दो।

मुख नीचा कर अरण्यानी बाहर निकल आई।

वेदना के साथ जब स्वीकार करना पड़ा, मन किसी दूसरे के पक्ष में नहीं हो सकता—तब खासतौर से अपने मन की गोपन कथा का पता न चला। एकदम निःशेष रूप से मानो मरने बैठी।

काम में जी नहीं लगा पाती, चुपचाप बैठी भी नहीं रह सकती। कमरे में आकर टाइपराइटर खोलती है कि लिखना बाक़ी है, पर एक पन्ना भी नहीं कर पाती और उठ खड़ी होती है।

नाराज़ हो कर शचीन से बोली—अरण्यानी, उसकी तरह लड़की तड़प-तड़प कर इधर-उधर मारी-मारी फिर रही है, ऐसा तो नहीं देखा। यह तो जैसे कोई ग्रह अपनी धुरी छोड़ कर दूसरे मार्ग में बहक रहा हो।

पागल, मेरी भी मति मारी गई। जो कुछ जानना था खुद से जानती तो रास्ता आसान हो जाता।

कठिन आघात, चाहे जिसके हाथ से आवे, कठिन होकर ही आता है। वह्नि के लिए परीशान होने की जरूरत नहीं है।

परीशानी की बात नहीं, मुझसे बर्दाश्त जो नहीं हो रहा है।

जब स्थिर न रह सकी तो शिखा आई शिखरेश्वर के पास बत्ती जला कर किताब पढ़ रहे हैं, आकर खड़ी होकर गर्दन ऊँची

कर बोली, तुम्हारा वह पहला और आखिरी ही अगर सबसे बड़ा सत्य है, और बीच का समस्त हा यदि मिथ्या है तो उस मिथ्या से मुझे क्यों भुलाया ?

शिखरेश्वर को ठेस लगी, मन छलछला आया, भर्राई आवाज़ से बोले—शिखा, मैंने भुलाया है तुम्हें, याद नहीं आ रहा है। यदि कभी भूल हो गई हो तो माफ़ करो।

जाने दो, सब शेष हुआ। घबराओ मत, कुछ ज्यादा नहीं कहूँगी। यह बात भी न कहती। मन है ऐसा सोच कर जिस मन को अपने हाथों गढ़ा है उसने जब जाना कि मन अब नहीं है, तो व्याकुल हो उठा, स्थिर नहीं रह सका। मेरा इस तरह का जानना क्या एकदम मिथ्या है ?

दूसरे से जानकर बढ़ उठी वेदना, किसी तरह शांति नहीं मिली। इसी से ख़ुद तुम्हारे मुँह से सुनने आई हूँ।

वेदना से आहत हो उठे सुन कर, बोले—कहो, मैं क्या करूँ ?

इस स्पर्श से शिखा के भीतर वाली चिरंतन अग्नि भभक उठी, हाथ जोड़ कर बोली, माफ़ी चाहती हूँ। स्त्रियों की तुम लोग जो अवज्ञा करते हो वह वरन् बरदाश्त हो सकता है पर दया करने की भूल न करना, वह न बर्दाश्त होगा।

स्तब्ध हो शून्य की ओर ताकते रह गये। कुछ क्षण चुप रह कर बोले, अब तुम क्या करोगी ?

दो बरस पहले मैं अपने आज के जीवन को नहीं जानती थी। यह तो मेरे अपने ही हाथों का गढ़ा हुआ है। आज से जो एक नये ज़ीवन का आरम्भ होता है वह भी जाग्रित रहेगा मेरे ही हाथों, तुम चिन्ता मत करो।

शिखा, लज्जा दी तुमने मुझको।

नहीं, विराट है तुम्हारा मन। वेदना से क्षीण हो जो शिखा तुम्हारे पास आई उसे ग्रहण कर सकते हो दया दाक्षिण्य से—रस के समुद्र में जो शिखा विकसित हो उठी थी, उससे सहज ही मुँह

मोड़ लिया था, प्रेम का दाक्षिण्य तुम्हारा बँधा पड़ा हुआ है। जाने दो, मैं तो तुम्हें सिर्फ़ अपनी दुख की रातों का संगी नहीं बनना चाहती।

समझ नहीं पा रहा हूँ, क्या कहूँ।

कुछ मत कहो! मैंने अपने इस विचित्र नवीन जीवन को तुम्हारा दान समझा था। इसी से सोचा था, इसे तुम्हारे ही हाथ समर्पण कर निश्चिन्त हो जाऊँगी सदा के लिए। मेरी वह चिन्ता अब दूर हो गई है।

आँखें भर आईं, रोध करने जाकर रुद्ध हो उठा कंठ—बोली—तो जा रही हूँ।

बाहर आने पर याद आया, एक दिन और इस मकान से लौट चुकी हूँ। उस दिन की बातें याद आने पर आँखों में जल गिरने लगा।

लड़के दल बाँध कर घर पर आये, समस्वर से बोल उठे, तुम्हारे चले जाने पर यहाँ रह क्या जायगा? ऐसा कभी हो सकता है?

हँस कर बोली, जाना तो पड़ेगा ही।

दल बोला, इतनी आसानी से छोड़ दे सकती हो?

अरण्यानी आड़ में रो उठी। शिखा ने कहा, अरण्य तुम क्यों, तुम तो सब ही जानती हो।

शिखा लड़कियों के स्कूल की मास्टरी मंज़ूर कर पहाड़ चली गई, दूर, काफ़ी दूर।

अनागत आलोक संधानी किसी तरह टूटी-फूटी चली कुछ दिन, जैसे कुछ आयु शेष हो।

इस तरह तीन बरस कटे।

इसी बीच शिलॉङ्ग पहाड़ पर शिखा की माता सम्बन्धी सब चिन्ताओं का अन्त हुआ।

काम के बन्धन से मुक्त होने पर शिखा को बस वही एक बन्धन रह गया था, माँ का बन्धन टूटने पर शिखा बोली, बस अब और नहीं।

खबर आई शिलॉङ्ग पहाड़ से शिखा यकायक अन्तर्ध्यान हो गई। जब एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक खोज करने पर भी उसका कुछ पता न चला तब अरण्यानी रो पड़ी।

अनागत आलोक संधानी की आयु एकदम शेष हुई।

× × ×

दस बरस बाद उठी यवनिका। अतीन के पास चिट्ठी आई, अरण्यानी की चिट्ठी।

वह्नि से भेंट हुई, काश्मीर के पथ में तपस्विनी वेश में। गेरुए की आड़ में है उसका क्षीण देह, मानो तप रही है सौर जगत की दीप्त अग्निशिखा। ये हम लोगों की वह्नि नहीं है जिसे देखते थे डिबेट में, लिटरेरी मीटिंगों में, अनागत आलोक संधानी में। शिखरेश्वर के पाँव की आहट पाते ही चौंक उठने वाली वह्नि यह नहीं है, प्राण के आनन्द में विकसित, आत्मा के आनन्द में संपूर्णता है यह वह्नि।

एकदम सामने खड़ी होकर मैंने पूछा, क्या तुम वह्नि ही हो?

उसने कहा—नहीं, मैं वह्नि नहीं हूँ।

तो कौन हो तुम?

मैं जो हूँ उसे तुम लोग मानोगी किस तरह?

हाथ में हाथ दाब मैंने कहा—मुझे ठगोगी? वह्नि, यह तुम ही हो।

सब को मैंने ढँक रक्खा था, बड़ी शर्म आई, सब को मुक्ति दी, और मेरी अपनी मुक्ति भी हुई।

सच कह रही हो?

सच कह रही हूँ।

शिखरेश्वर को बिसार सकी हो?

मुँह भर उठा हँसी से, बोली, जरूरत नहीं हुई बिसारने की। प्रेम जब चलने के पथ पर अग्रसर हुआ तो उसने सब से बड़ी शक्ति ला दी।

मैंने कहा वह्नि, उस दिन यकायक शिखरेश्वर आये, कितना व्याकुल, कितना असहाय था उसका चिरशान्त मुख ! बोले—शिखा तो तुम्हें प्यार करती थी, इसीसे तुम्हें बताता हूँ, आज मैं अपने को पहचान जो पाया हूँ। आज मुझे बड़ी ज़रूरत जो है उसकी।

वह्नि लौट चलो।

नहीं, नहीं, बाहर से कुछ नहीं चाहती। उन्हें जब मैंने पा लिया अपने अन्दर, मन बोल उठा—जिसे पाकर मानो सब कुछ पाया, उसे पा लिया। क्षोभ नहीं रहा। यह तो मुझे राह चलते मिला, क्या आनन्द ! क्या मुक्ति !

इतना बड़ा आघात दोगी उनको ?

छलछला आईं आँखें, बोली—बाहर से जो आघात सा दिखता है वह तो आघात नहीं है, वह है अपने को जानना। अरण्य, अतीन कहाँ है ?

अपने घाट से जिसे लौटा दिया, ले आई उसे अपने घाट।

ख़ुश हो उठी। बोली, जिस दिन उसे लौटा दिया था, कुछ समझ नहीं पाई थी। जिस दिन प्रेम किया उस दिन मानो तुम्हारे मन का इंगित मिला। अरण्य, अपना धन तुमने पाया, और चाहिये क्या ? -

ठीक हुआ, नहीं कहना।

तुम्हारा घाट अगर मिला होता तो क्यों कभी हमारे घाट आता ? यही बड़ा डर है, शायद बाँधने ही भर है, मन नहीं है।

नहीं, नहीं, है क्यों नहीं, व्यथित हो उठा उसका स्वर, बोली, क्षोभ मत करो अरण्य, पूरे मन को कभी किसी ने पाया है !

चुप हो रही।

समझी, क्यों हम लोग वह्नि को इस क़दर सबसे ज़्यादा प्यार करते थे, यह क्या उसकी प्रचंड बुद्धि के कारण था ? उसके तेज के कारण ? उसके स्थान पर होती यदि कोई और लड़की तो ईर्ष्या से हम जल मरतीं। कुछ और ही तब थी।

असल बात—उसके अन्दर हमने विशेष को देखा था, और नहीं होता है आकर्षण। उसी विशेष को देखा उसके काम में, प्रेम में। आज की तपस्या भी उसी का विकास है।

विदा होते समय बोली, अतीन से कहना, कवि का आनन्द उसके दान में नहीं है, सृजन में भी नहीं; अपने अन्तस्तल से अपने ही भीतर रमने के आनन्द में है। इतने दिन बाद यह सत्य मैं जान सकी हूँ।

मैं बोली, अब कब भेंट होगी वहि ?

हँसकर बोली, अब नहीं।

'पैन' की पंचत्व-प्राप्ति

नन्दू चटर्जी आदमी जरा कुछ अजीब क़िस्म का था और सिंधू के साथ उसका परिचय भी काफ़ी अजीब तरीक़े से ही हुआ। यों क्या परिचय नहीं था! परिचय था। एक गाँव में मकान, और नन्दू सिंधू को नहीं जानेगा। लड़कपन से ही नन्दू सिंधू को देखता आ रहा है, बातें की है, अक्सर झगड़ा करके गालियाँ भी सुना चुका है। पर इसको 'परिचय' थोड़े ही कहते हैं।

उनके गाँव के उत्तर ओर था एक बड़ा मैदान, उससे कुछ और हट कर रेल की ऊँची लाइन पार कर शहर जाने का रास्ता है। वहाँ धान की कल में सिंधू का बाप काम करता है। चौदह बरस की लड़की सिंधु अपने दस बरस के भाई तनू के साथ बाप को खाना पहुँचाने गई थी। लौटती बेर मैदान के बीच शाम हो गई। मैदान के बीच ही में गाँव के बड़े जमींदार का बाग़ था और वहाँ अभी से घना अँधेरा हो चला था। बगीचे के किनारे से ही गाँव का रास्ता था और दूसरी ओर एक पुरान। पीपल का बहुत बड़ा दरख्त था। बगीचे के किनारे

आकर दोनों भीत प्राणी ठमक गये। नन्दू चटर्जी अपनी आदत के मुताबिक उधर घूम रहा था। उसने जो देखा कि दोनों भयभीत प्राणी डरके मारे वहीं मानों गड़ गये हैं तो उसकी दुष्ट-बुद्धि तुरंत सजग हो उठी। उनको डराना होगा। खूब रही, अच्छा मजा आवेगा। नन्दू हट कर पीपल की आड़ में अँधेरे में छिप गया। और तनू को डराने में क्या लुत्फ़, साथ में है सिंधू—किशोरी सिंधू, लुत्फ़ तो उसे डराने में है!

पीपल तले था मच्छड़ों का अखंड साम्राज्य—और उन्होंने नंदू को सिर से पैर तक ढँक लिया पर क्या मजाल जो नन्दू जरा हाथ तक उठावे। वह जरा हिला तक नहीं। अँधेरे में उसकी तीक्ष्ण दृष्टि तनू और सिंधू की ओर लगी हुई थी और अब वे दोनों एक-एक क़दम आगे बढ़ रहे थे। तनू अस्फुट स्वर से कह रहा था, जीजी, कल बिंदा कह रहा था, इस पीपल पर एक बरम् रहता है।

सिंधू टूटे स्वर से उसे डाँट कर बोली—चुप, पागल, बरम् नहीं तेरा सर रहता है।

नन्दू चटर्जी अँधेरे में हँसा, सिन्धू की फटकार का मतलब वह समझता है। भाई की तरह बहन भी डर गई है।

उसी क्षण सिन्धू और तनू पीपल के तले पहुँचे, और यकायक बरम् ने उनके ऊपर धूल झोंक दी। भाई-बहन विकृत स्वर से चीख उठे और जी छोड़ कर भागे। जरा दूर जाते ही सिन्धू ठेस खाकर मूँ के बल गिर पड़ी। तनू भर जोर दौड़ कर ब्रह्मराक्षस की पहुँच के बाहर निकल गया। नन्दू इस घटना का भरपूर लुत्फ़ उठाता हुआ सिन्धू के पास दौड़कर पहुँचा। पास जा दोनों हाथ थाम उसे खड़ा किया और बहुत तरह से उसे दिलासा देने लगा। सिन्धू अभी भी रो रही है। अच्छी तरह देखने पर नन्दू को मालूम हुआ कि उसकी उँगली में चोट लगी है, खून बह रहा है। नन्दू बोला, देखो तो, शाम को भला इस तरह अकेले घूमना होता है! तू इतनी बड़ी हुई। मैं

बगीचे में टहल रहा था, तेरा रोना सुनकर दौड़ा आया। तुझे हुआ क्या सिन्धू ? डर गई क्या ?

आँसू भरी आँखों को ऊपर उठा कर सिन्धू ने सिर्फ़ एक बार उसकी ओर देखा। नन्दू जान गया कि सिन्धू उसकी चालाकी समझ गई है। वह भी उस्ताद आदमी, टाल गया, कहा, चल, झरने के पास चल, पाँव का ख़ून धो डाल।

सिन्धू मानो चलना नहीं चाहती, और चल वह सकती भी नहीं। पाँव से काफ़ी ख़ून टपक रहा है। नन्दू ने उसकी एक न मानी और उसे आधी गोद में लिए आधी घसीटता हुआ सोते के किनारे हरी घास पर लिटा दिया। फिर जबरन उसका पाँव खींचकर सोते के जल में डुबा दिया। औव्वल तो नन्दू नौजवान था और फिर ब्राह्मण। हलवाहे की लड़की सिन्धू ने बहुत आपत्ति की पर नन्दू ने उसकी एक न सुनी। उसके जख़्मी पाँव को बड़े आदर से झरने के पानी से धोने लगा।

चारों ओर सन्नाटा, सिर्फ़ चारों ओर के पके धानों के खेतों के बीच वाले बगीचे से अनवरत झिल्ली की झनकार आ रही थी। पास ही किसी अज्ञात गह्वर से दबा हुआ कल-कल शब्द उठ रहा था—झरने का पानी पृथ्वी-तल से ऊपर उठ रहा था। पास वाले बगीचे में घोर अन्धकार। भीगी तप्त बयार से पके धान की बास मिलकर समूचे स्थान को अलस तन्द्र कर रही थी।

वह दोनों चुप बैठे रहे। यकायक चुटीले पाँव को उठाकर सिंधू भाग खड़ी हुई। भूत के भय से जितनी तेज़ी से भगी थी उससे कहीं ज्यादा तेज़ी से। क्यों ऐसा हुआ, यह वह और सिंधू ही जानें। उधर से तनू हाँक रहा था, जीजी ! जीजी ! सिंधू बोली, क्यों चिल्ला रहा है, आ तो रही हूँ। पास आकर तनू ने पूछा, जीजी क्या होगया था तुझे ? जीजी ने उत्तर दिया, हुआ क्या था, डरपोक कहीं का, मुझे अकेली छोड़कर भाग आया, मरी की जीती हूँ यह भी नहीं देखा

ज़रा। भई है सचमुच भूत उस पीपल पर, अब उधर से जाना बन्द। चल, घर चलें।

नन्दू चटर्जी इन बातों को सुन पाया। हँसा और फिर घर का रास्ता लिया।

कुछ दिन बाद। इस बीच नन्दू सिन्धू को देख नहीं पाया। देखने की प्रबल इच्छा और चेष्टा करने पर भी वह उसे कहीं दिख न पड़ी, सिन्धू मानो जनता के समुद्र में डूब गई।

पर इससे नन्दू का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। वह अच्छा है, अच्छा रहना ही उसका स्वभाव है।

और यह सम्भव इसलिए हो सका था कि संसार में वह अभाव-ग्रस्त नहीं था। यों तो वह अकेला था। एक माँ थी, सो भी साल भर हुआ चल बसी थी। गाँव में और दूसरा ब्राह्मण नहीं था। उसके पितामह को इस गाँव के जमींदार—शहर के तारिणी राय—ने यहाँ लाकर बसाया था, गाँव के लोगों की धार्मिक क्षुधा-निवारणार्थ; बिचारे दरिद्र ब्राह्मण, गाँव में पूजा-पाठ से ही उनका चल जाता था। पर उनके पुत्र, यानी नन्दू के पिता, जजमानी के पास भी कभी नहीं फटके। जितनी जमीन बाप ने ज़मींदार से पाई थी, और जितनी उन्होंने अपने उपार्जित धन से खरीदी थी, उन दोनों को मिला कर उन्होंने खेती में मन लगाया। और फिर वह ज़रा रूखे क़िस्म के आदमी थे। वह दुनिया में सिर्फ़ दो चीज़ जानते थे—अपनी स्त्री, जो असाधारण सुन्दरी थी, और अपनी ज़मीन, बस। और सबसे वह करते थे ईर्ष्या और दूसरों के मुख पर भी वह अपनी ही ईर्ष्या को प्रतिबिंबित देखते थे। फलतः अधिकांश लोग उनकी घृणा के ही पात्र थे। पर शायद और वैभवशाली जमींदार, तारिणी राय, आदमी ज़रा भयंकर थे। इसीलिए मामूली किसानों के नजदीक जो आदमी महाजन था वही ज़मींदार के निकट अनुगत भृत्य था। ज़मींदार जब गाँव आते तो खाना उन्हीं के यहाँ खाते। कहते हैं, रात को वह ज़मींदार का पद-सेवा भी करते थे। इसका फल यह हुआ कि अपने परिश्रम और

ज़मींदार की कृपा से वह मरते समय अपने पुत्र नन्दू को पचास बीघे एकचक ज़मीन दे गए।

इसी से नन्दू मज़े में है। स्कूल में वह शुरू-शुरू में गया था कुछ दिन, पर अच्छा नहीं लगा, इससे छोड़ दिया। पर एक बहुत दिन की बात है। उसका बाप तब भी शालिग्राम और शिव पूजा का मंत्र और पद्धति जानता था पर नन्दू इतना भी नहीं जानता था और न जानने का आग्रह ही कभी उसे हुआ। वह पढ़ना छोड़ हमउम्र लड़कों के साथ चिलम पीकर, वयस्क किसानों के साथ गप्पें लड़ाता, या मैदानों में घूमा करता। इसी तरह चैन से उसके दिन कटते थे।

पर हमजोलियों से ज़्यादा नन्दू अधेड़ किसानों के साथ ही ज़्यादा दिखलाई पड़ता है। वे सभी नन्दू को बुरी तरह चाहते और ख़ातिर करते थे, कुछ तो नन्दू के स्वभाव के कारण पर एक विशेष कारण था। पचास बीघे ज़मीन का मालिक नन्दू दुनियाँ में अकेला है। इतनी पैदावार वह क्या करेगा? और फिर झरने के चारों ओर वाली ज़मीन ही उसकी है जो कि इस अंचल की सबसे अच्छी ज़मीन है। फलतः कोई ऐसा किसान नहीं है जिसके साथ थोड़ा-बहुत ज़मीन या ग़ल्ले का संपर्क नन्दू से न रहा हो। वह प्रायः यों ही दे देता था, अक्सर उधार देकर लेना भूल जाता था; और कभी-कभी क्रमशः वसूल करने की सुविधा भी दे देता था। इस ज़मीन में से दो-दो चार-चार बीघे करके उसने कई किसानों को खेती करने को दे रक्खा है। इसी से नन्दू से वह सब दबे रहते हैं और बहुत चाहते हैं।

पर नन्दू के पिता जब तक जीवित थे, यह सुविधा किसी को न मिल सकी थी। इसी से अक्सर लोग, ख़ासकर पुराने लोग नन्दू पर अक्सर फब्तियाँ भी कसते, कभी ताने भी जड़ देते—इशारतन। पर इन तानों और फब्तियों का कारण थी उसकी सूरत। पर इसके यह मानी नहीं कि वह बदसूरत था; बल्कि आसपास के गाँवों के कई हज़ार लोगों में ऐसा ख़ूबसूरत शायद ही कोई मिलता। वह सुन्दर होता क्यों न? उसकी माँ भी गाँव की असाधारण सुन्दरी थी। उसका

पिता अवश्य बहुत मामूली ढंग का आदमी था देखने में। पर का कारण यह भी नहीं था। नन्दू के सुडौल चेहरे में तोते की नुकीली और बहुत लंबी नाक एक ऐसी चीज़ थी जो बड़ी बेतुकी लग थी और ऐसी नाक इस अंचल में ज़मींदार तारिणी राय को छोड़ और किसी की नहीं थी। पर तारिणी राय की उम्र इस समय ना से कम न थी और उसकी ज्यादा से ज़्यादा बीस। पर लोग मैदा की सर्वोत्कृष्ट पचास बीघा ज़मीन और नन्दू की वह इस सुर्द बंकिम नासिका इन दो आश्चर्यजनक बातों के बीच के रहस्य के घाटन में लग जाते और इन दोनों के बीच एक सामंजस्य भी स्थापि करने लगते। हाँ, अब अलबत्ता इस बात को याद रखना ये ज़रू नहीं समझते हैं और नन्दू को बहुत प्यार करते हैं। उसे बड़े चा से 'मालिक' कह कर पुकारते हैं।

नन्दू मगर समझता सब है। इतने आदर और स्नेह के मू में लोगों के लोभालोभ का प्रश्न जो उठा था इसे वह ख़ूब समझत है। पर इससे उसका बिगड़ता ही क्या है? जो कुछ पैदावार होत है उसके ज़रा से में ही तो उसका काम हो जाता है; फिर जो बचत है उसे खा कर गाँव के लोग पलें।

आहार का अभाव नन्दू को नहीं है, इसी से खटने की ज़हमत भी उसे नहीं है। पर खेतों में रोज़ अपना जाना वह ज़रूरी समझत है। वहाँ वह ख़ुद तो कभी कोई काम नहीं करता पर तीक्ष्ण दृष्टि से सब देखता रहता है। हलवाहे भी उसे भरसक धोका नहीं देते केवल प्रयोजनवश ही वह उसके खेत में काम नहीं करते, इसमें उनको आनन्द भी आता है। ऐसे ही लोगों को नन्दू ज़्यादा प्यार करता है। लोग जब जी लगा कर खेतों में काम करते हैं तब नन्द इधर-उधर घूमा करता है। दिन चढ़ने पर जब धूप कड़ी हो जाती है तब नन्दू अपने धूल भरे पाँवों को झरने के पास जाकर उसके शीतल जल में डुबो देता है और चुपचाप बैठा रहता है। पाँवों के आंदोलन से चंचल जल स्थिर हो जाता है तब मुँह बढ़ा कर उसमें वह अपनी

प्रतिबिम्ब देखता है। या कभी-कभी जल को धीरे-धीरे आघात कर अपनी छवि को हिला कर, चंचल कर मिटा देता है और उसी ओर देखता रह जाता है। या कभी स्फटिकवत निर्मल उस जल में तीन आँख वाली तैरती हुई उन छोटी मछलियों को पकड़ने की कोशिश करता है। कभी पानी के किनारे उगी हुई नरई तोड़ कर उसकी बाँसुरी बना कर बजाने लगता है और कुछ देर बजा कर फेंक देता है और फिर किसी दूसरी ओर मन लगाता है। फिर धूप ज्यादा कड़ी होने पर राय बाबू के बगीचे में चला जाता है और वहाँ पेड़ों की घनी काली छाया तले आराम से लेट जाता है। या तो पेड़ों के अंतराल से शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखता रहता है, या दूसरे दिगंतर में अकारण निगाह गड़ाये पड़ा रहता है और नहीं तो शीतल छाया में सुख की नींद सो जाता है। उसके संपूर्ण जीवन को व्याप्त कर विराज रहा है एक सुमधुर आलस्य। उसे कोई कमी नहीं है, न किसी वस्तु का प्रयोजन। जितना प्रयोजन है उससे कहीं अधिक उसके पास है। वह बड़े आराम से है। सिर्फ़ बीच-बीच में इसकी दुष्ट-बुद्धि सजग हो उठती है किसी को डराने या तंग करने के लिए। कभी किसी को कुछ साधारण क्षति पहुँचाने की उसकी प्रबल इच्छा हो उठती है और इच्छा होते ही वह उस काम को कर डालता है।

उस दिन बहुत देर हो चली थी। नंदू किनारे से एक बड़ा सा नरकट का डंठल काट कर उसकी बाँसुरी बनाता हुआ चला और बगीचे के किनारे वाली ऊँची ज़मीन पर पहुँचा। कुछ ही क्षण में वह हरा डंठल एक बाँसुरी में परिणत हो गया।

बीच-बीच में नंदू के दिमाग़ में अजीब-अजीब क़िस्म के ख़याल उठते हैं। उसके खेत सब ऊँचे पर हैं परन्तु झरने के अविराम जल-सिंचन से इनकी उर्वरता अपरिमित है। कुछ ही दूर पर नदी है। वह झरना एक अति क्षीण जल-धारा से उस नदी के साथ अपना संपर्क बनाये हुये है। नंदू को यकायक सूझा कि इस संपर्क के उद्गम का पता लगाना चाहिये। इस कार्य को समाप्त कर वह अभी लौट

ही रहा था, पाँव कीचड़ से लथपथ और हाथ में नई बनाई हुई बाँसुरी। बाँसुरी बजाते-बजाते नंदू शून्य स्निग्ध दृष्टि से मैदान की ओर इधर-उधर देखने लगा। अभी ज़्यादा दिन नहीं चढ़ा है, झरने के किनारे, घास के सिरों पर झुक पड़े हुये पके धान के डंठलों पर पड़ी हुई ओस की बूँदों पर सूर्य की किरणें मानों आलिंगन-पाश-बद्ध कर ली गई हैं। हलकी बयार के झोंकों से कंपित होकर वे संध्या के प्रथम तारों की भाँति प्रति मुहूर्त विचित्र वर्णच्छटा में उद्भासित हो रही हैं। कुछ कौए, तोते आदि कलरव करते हुये पके धान चुन रहे हैं और मानों आनन्द-विभोर हो इधर-उधर उड़ रहे हैं। झरने के किनारे से घास के ऊपर से हो कर एक विचित्र हिल्लोल से हवा के झोंके रह-रह कर गुजर जाते हैं। नंदू यह सब देख रहा है और बाँसुरी बजा रहा है। उस सरकंडे की बाँसुरी से एक बड़ा कर्कश राग निकल रहा है। सब कुछ मिल कर समस्त प्रभात मानों एक अखंड संगीत की भाँति काँप-काँप कर बज रहा था।

अकस्मात वह संगीत छिन्न हो गया, सिंधू आ रही है। साथ ही शहर वाली धान की मशीन की सीटी भी बज उठी। नंदू उठ कर खड़ा हो गया। छिपना होगा, उसे देख लेने पर सिंधू उधर से हरगिज़ न जायगी। नंदू हट कर आम के उस बड़े पेड़ की आड़ में छिप गया। सिंधू उसे नहीं देख सकी। सिंधू के हाथ में एक झोला था, वह सूखे पत्ते और टहनियाँ बटोरने आई थी। उस आम के पेड़ के बग़ल से ज्योंही सिंधू गुज़र रही थी पीछे से उसके सिर पर एक बड़ी मुलायम चपत पड़ी। चौंक कर ज्योंही वह पीछे घूमी, नंदू ने अपने बाहुपाश में उसे कस कर सीने से चिपका लिया। सरकंडे की बंसी टूट गई। सिंधू घबरा उठी और फुक्का फाड़ कर रो पड़ी। नंदू मीठी हँसी हँसता हुआ उसे तसल्ली देने लगा।

कुछ देर बाद सिंधू का रोना रुकने पर नंदू उसका हाथ पकड़ कर बगीचे से बाहर निकला। यकायक पीछे से बंदूक़ छूटने की आवाज़। नंदू ने चौंक कर सिंधू का हाथ छोड़ दिया और वह

भाग खड़ी हुई बेतहाशा। नंदू के पीछे, अँग्रेज़ी पोशाक में, हाथ में बंदूक लिए एक सज्जन खड़े थे। एक बार भागी जाती हुई सिंधू की ओर, फिर एक बार नंदू की ओर देख कर वह सज्जन बग़ीचे से बाहर की ओर धीरे, मथंरगति से, चल पड़े। नंदू कुछ देर उन्हें घूरता रहा फिर आलस्य-भार से वहीं घास पर लेट पड़ा और उस टूटी हुई बाँसुरी को हिलाने-डुलाने लगा। कुछ देर बाद उसने उसे फेंक दिया और आँख मूँद कर गहरी नींद में सो गया।

दोपहर के समय हलवाहों ने उसकी निद्रा भंग की। बोले, मालिक, उठो, घर चलो, रोटी खाने की बेला हुई।

वह उठ कर खड़ा हो गया। चलते-चलते उनमें से एक ने पूछा—मालिक, जानते हो, वह जो साहेबी पोशाक पहने हुये था, कौन था ?

"नहीं। जैसे कोई नवाब का नाती हो,"—नंदू के कंठ-स्वर में ऊष्मा और श्लेष दोनों का पूरा सम्मिश्रण था।

"नवाब का नाती तो है ही मालिक वह। वही शहर वाले ज़मींदार तारिणी राय का छोटा लड़का रजनी राय।"

"पर वह यहाँ आया क्यों ? शिकार करने ! तुम लोगों को डराने ! हुँः, बड़े कहीं के—"

"पर तुमने जाना कैसे ? वह तुम्हारी खोज कर रहा था ठाकुर। पूछ रहा था, यह बढ़िया ज़मीन किसकी है। सब पता लगा लिया उसने। एक चक तुम्हारी इतनी ज़मीन देख कर ताज्जुब में आ गया। पूछ रहा था इतनी ज़मीन तुम्हारे पास आई कहाँ से ?"

"उसी के बाप-दादों ने ही तो दी थी मेरे बाप को"—नंदू बीच ही में बोल उठा।

"सो तो है ही मालिक। ज़मीन अपने भाई-बेटे को न देकर और किसे कौन देता है। हमने भी यही बात कही साहब बहादुर को कि, बाबू, ज़मीन नंदू को और कौन देगा ! उसके बाप का ही कमाई है सब, अपने बेटे को दे गया।"

"हाँ, तो यही कहो न। ज़मीन पैदा कर गए हमारे लिए हमारे बाप, और दूसरा कौन देने वाला है। एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर हमारे बाप ने यह दौलत कमाई और बढ़ाई थी। इसे तारिणी राय ने दिया है न उनके लड़के रमनी या रजनी ने।"

"नहीं मालिक! तुम्हारे बाप मिहनत ज़रूर करते थे, पर अकेली मिहनत से कहीं इतना हो सकता है! तुम्हारी माँ थी साक्षात् लक्ष्मी। उसे रुपये की कमी कभी न हुई। तारिणी राय का बड़ा लड़का रमनी राय, वही, जो उसे देके मर गया, तुम्हारे बाप को बहुत मानता था। तुम्हारे बाप भी दिल के बड़े साफ़ आदमी थे। रमनी बाबू ने ही तुम्हारी माँ के रुपयों से तुम्हारे बाप को ज़मीन ख़रीद दी थी।"

"दी होगी, हो सकता है, मुझे नहीं मालूम। माना कि रमनी बाबू बड़े दयावान आदमी थे पर बिना पैसे के तो ज़मीन उन्होंने दी नहीं।"

"सो तो है ही मालिक, बिना टके के कोई ज़मीन देता है? अच्छा मालिक, आज रजनी क्यों तुम्हारी ज़मीन की बात पूछ रहा था?"

"क्या मालूम!"—नंदू ने प्रश्न पर समाप्ति रेखा खींच दी।

पर इसका पता दो-एक दिन बाद ही चल गया कि तारिणी राय का लड़का क्यों नंदू की ज़मीन की जाँच-पड़ताल कर रहा था। इसका पता सिंधू से चला।

सिंधू अब रोज़ नंदू के पास आती है। दोपहर को मैदान में उसका खाना दे आती है, और, उसी मौक़े पर, उसके पास कुछ देर रुक कर गप्पें लड़ाती है, हँसी-मज़ाक करती या कभी गुनगुना कर गाती है। परमतृप्ति के साथ आहार कर नंदू आराम से घास पर हाथ-पाँव फैला कर लेट जाता है और सिंधू के साथ गप्पें लड़ाता है। सारा दोपहर आलस्य में मंथर और रहस्य में मधुर हो उठता

है और बड़े मज़े से कट जाता है। अपने जीवन में वह आलस्य और आराम की खेती कर सफल हुआ है।

बगीचे में पेड़ों की घनी छाया तले वह लेटा रहता है। सिंधू बग़ल में बैठ कर गप करती है। वह कभी सिंधू की ओर, कभी दूर, कभी पास की चीज़ों को देखा करता है। मैदान में कुछ हलवाहे थक कर, पाकर के पेड़ तले बैठ कर, तम्बाकू पी रहे हैं, सुस्ता रहे हैं। जो लोग काम कर भी रहे हैं उनकी गति श्लथ हो चली है। प्रचंड धूप और ताप से मानो सभी शिथिल हो गए हैं। दूर हवा काँपती-काँपती मानो ऊपर भागी जा रही है। उसके कंपन से पीछे की सभी चीज़ें काँप रही हैं। चारों ओर 'झाँ, झाँ' का अस्फुट पर निरंतर रव हो रहा है, माना गंभीर क्लान्ति से चूर हो कोई निश्वास फेंक रहा है। बीच-बीच में हवा के झोंके आकर सूखे पत्तों को उड़ा ले जाते हैं, और साथ ही पेड़ों की हरी पत्तियाँ काँपने लगती हैं। गिलहरियाँ, कठफुड़वे और गिरगिटान सब आहार और आश्रय की खोज में इधर-उधर भाग रहे हैं। नंदू प्रतिदिन इस आलस्य का उपभोग करता है। वह दिन भी इसी भाँति कट जाता पर सिंधू की एक बात से सब गड़बड़ हो गया। सिंधू ने अपने बाप से एक बात सुनी है। वह राय बाबू के धान-कल में काम कर रहा है। राय बाबू का छोटा लड़का अभी-अभी विलायत से लौटा है। उसे यहाँ पर चीनी का कारखाना खोलने की धुन सवार हुई है और इसके लिए गन्ना पैदा करने की जमीन चाहिए। इसीलिए वह कारखाने के पास ही बहुत सी जमीन चाहता है। और सब से अच्छी जमीन है नंदू की। इतनी उपजाऊ और एकचक इतनी जमीन कहीं नहीं है। यह जमीन वह लेगा, और उचित मूल्य देकर लेगा।

नंदू के लिए वह दोपहर, सिंधू का सहवास, सभी कुछ विषाक्त हो उठा। वह दूर दिगंत की ओर टकटकी लगा कर देखता हुआ गुमसुम पड़ा रहा। क्रमशः रजत शुभ्र धूप हरिद्रावर्ण में परिणत हुआ, अपरान्ह वेला आई। हलवाहे हल-बैल लेकर घर चल दिये।

दिगंत की कंपित उज्ज्वल छवि धीरे-धीरे स्थिर म्लान हो चली। छाया उतरी, एक-एक कर तारे आकाश में छिटकने लगे। सिंधू का... उसके पास से चली गई, उसे पता भी नहीं। बहुत देर बाद वह ए... दीर्घ-निश्वास लेकर उठ खड़ा हुआ।

बात सच्ची थी। कुछ दिन बाद वह बुलवाया गया रजनी रा... के ख़ास कमरे में। वह बिचारा खेत खलियानों में घूमने वाल... आदमी! जल के किनारे बैठ, पकी फ़सल की सुगंध का जी भ... आस्वादन कर, पेड़-पत्ते और जंगली पशु-पक्षियों को देख कर... उसके दिन कटते हैं। उसने आजीवन एक भगवा-मात्र पहनने वा... हलवाहों से ही बातचीत की है—सो भी ग्राम्य-भाषा में। ज़मींदा... का बुलावा था; उनकी पक्की हवेली में जाकर और साहबी पोशाक प... रजनी राय के सामने खड़ा होकर वह सचमुच भीत और विव्रत... उठा। उसने झरने के स्वच्छ जल में अपनी छवि देखी है। रज... राय का चेहरा कितना ज्यादा उससे मिलता-जुलता है! रजनी रा... की नाक ठीक उसी की तरह लम्बी और बाँकी है, आँखें ठीक वैसी... छोटी। फिर भी कितना अंतर है! राय का मुँह चिकना-चुपड़ा औ... पालिश किया हुआ सा; दृष्टि उसकी तरह कौतुक-पूर्ण नहीं... उज्ज्वल, तीव्र चेहरे पर उसकी तरह छोटी-छोटी दाढ़ी-मूछें न... हैं, सब साफ़। उन्होंने गम्भीर भाव से उससे कहा—"सुनो नंदू, तु... क्यों बुलाया, सुनो। तुम्हें अपनी वह पचास बीघा एकचक ज़मी... मुझे देनी होगी। अवश्य मैं उसकी पूरी क़ीमत दूँगा। दाम चा... दाम लो, या इसके बदले में दूसरी जगह सौ बीघा ज़मीन ले स... हो, समझे? मैं चीनी का कारख़ाना खोलूँगा, वह ज़मीन मु... चाहिये।"

नंदू ने समझा कि नहीं, कौन जाने? वह चुप खड़ा रहा। कौ... कह सकता है कि वह क्या उत्तर देता; पर यकायक बग़ल के क... से किसी ने गंभीर, जलद गंभीर, संबोधन से रजनी राय को ना... लेकर बुलाया। भू-स्वामी तारिणी राय का कंठ-स्वर था वह। नंदू

सुना, तारिणी राय उष्ण कंठ से पुत्र को कह रहे हैं, तुमने आज नंदू चटर्जी को बुला भेजा था उसको ज़मीन खरीदने के लिए? खबरदार, ऐसा काम भी न करना कभी, मैं तुम्हें मना करता हूँ। उत्तर में पुत्र ने कहा, नंदू बग़ल के कमरे में मोजूद है; भारी पावों के उठने और चलने का शब्द—क्या मालूम लड़के के बाप क्या कहेंगे! नंदू जल्दी-जल्दी कमरे से बाहर निकल गया। गृह-स्वामी ने कमरे में आकर देखा, कोई नहीं है। जिसको देखने आए थे वह चला गया था। उन्होंने एक बार अपनी अति दीर्घ नासिका और फिर बर्फ़ की भाँति सफ़ेद पुष्ट मूँछों पर हाथ फेरा—वह और कर ही क्या सकते हैं।

नंदू बड़ी तेज़ी से अपनी ज़मीन की ओर चला। बारम्बार वह गर्दन हिलाकर अपने आप कहता जाता था—ज़मीन मैं किसी तरह न दूँगा—नहीं, नहीं, नहीं; किसी तरह नहीं।

कई महीने बाद आखिर ज़मीन देनी ही पड़ी। सब ओर से मामला ऐसा संगीन हो उठा कि ज़मीन देने के सिवा और कोई चारा नहीं रह गया। कुमारी सिंधू संतान की जननी होगी। सिंधू की संतान होगी, पितृ परिचय-हीन; उसका पिता कौन?

सारे गाँव में लोकापवाद अस्फुट से स्फुटतर और फिर क्रमशः उद्दाम हो चला। सिंधू के पिता क्रोधातिरेक से नीरव हो गये और किसी अज्ञात जादू-मंतर से अंत तक नीरव ही रह गए और गाँव का कोलाहल भी अस्फुट हो गया।

किन्तु कौतुकप्रिय, आलस्य-परायण, संसार! चिन्ताहीन नंदू की छाती पर यह पत्थर का बोझ असह्य हो उठा। अब वह नहीं बर्दाश्त कर सकता था। वह छिप कर, ख़ुद ही रजनी राय के पास जाकर, अपनी ज़मीन बेंच आया और बदले में सूखे काग़ज़ों का पुलिन्दा लाया और शाम को अकेले में मिलने के लिए सिंधू से कहता आया।

शाम हो चली है, तब भी पश्चिमाकाश अभी लोहित वर्ण है। केवल रजनी राय का चीनी के कारखाने का समाप्तप्राय प्रासाद

अपने विराटाकार कृष्ण कलेवर द्वारा मानो आरक्त पश्चिमाकाश का ग्रास कर लेना चाहता है। नंदू और सिंधू अपने सूने खेत के बीचोबीच आमने-सामने खड़े हैं। झरने के किसी गुप्त गह्वर से वैसा ही कल-कल शब्द उठ रहा है।

मृदु-कंठ से नंदू कह रहा है—मैं चला सिंधू; अपनी लज्जा सिर पर ले, मैं चला। अपनी लाज तू आप ढकियो। पर जान मत देना, हाँ! या बच्चे की जान मत लीजो। तू उसे पालना। उसे मेरी तरह खेत-खलिहान में विचरने मत देना, आलसी होकर निकम्मा हो जायगा। बाबू के कारखाने में लगा देना। आदमी बन जायगा।

नोटों का पुलिन्दा सिंधू के हाथ में जबरन देकर नंदू चुप हो गया। सिंधू रो रही है। यकायक गमकदार हवा का एक झोंका उन दोनों के सिर पर से होता हुआ, पेड़ के पत्तों को व्यथित करता हुआ, कँपाता हुआ निकल गया। दूसरे ही क्षण दूर देवता के मंदिर में आरती का शंख और घंटा बज उठा। वह गंभीर शब्द तैरता तैरता आकर पहले दूर के, फिर पास के, फिर उन दोनों के सिर के ऊपर वाली तरुश्रेणी के शीर्षदेश में सिहरन पैदा कर ऊर्ध्वलोक में तारागण को आघात पहुँचाने दौड़ा। उसके स्पर्श से तारे सिहर उठे। उनके एक संकुचन में मृत्यु, दूसरे प्रसारण में जन्म का इतिहास गुप्त है। आरती के गंभीर शब्द में, तारों के इंगितमय स्पंदन में पुरातन देवता का मृत्यु-गीत ध्वनित हो रहा है, नवीन देवता का आविर्भाव होगा। संध्या के अपसृयमान पिंगल-राग ने सिंधू को शोकातुर रक्ताभ नेत्रों में उनके प्रेम की जो अनिर्वाण चिता जलाई है उसमें भी वही मृत्यु का राग बज रहा है। अकस्मात् उन दोनों के सिर पर से उड़ कर जाते हुए पक्षी-युगल के डैनों का शब्द हुआ। सिर उठा कर उन दोनों ने देखा, गुरगावियों की एक गोल नये धान के खेतों की तलाश में जा रही है। यहाँ की फ़सल खतम हो चुकी है। खेत सूने हैं। उसी डैने के शब्द में मानो उन दोनों का क्रमशः क्षीयमाण प्रेम-बंधन समाप्ति के शेष विंदु में आकर लीन हो गया।

इसके बाद वह व्यथित, भीत, कंपित, दंपति नीरव अश्रुपात और दीर्घ-श्वासों ही के बीच परस्पर एक दूसरे से विदा लेकर संध्या के उस अस्पष्ट छाया-लोक के बीच अदृश्य हो गई। समग्र वन-भूमि तथा शस्यशून्या धरित्री ने मूक व्यथा के साथ वह विच्छेद-दृश्य देखा।

सोफ़ी

नहीं जमाल। सोफ़ी को मैं इससे कम में नहीं दे सकती। जमाल हुसेन हिसाब करने लगा। सोफ़ी है दुबली-पतली। फिरंगियों के हाथ उसे बेंचने पर बीस रियाल (रुपये) से ज्यादा न मिलेंगे। उनसे ख़रीदूँगा दो ऊँट। और अगर अदिस अबाबा में बेंचू तो एक बीस विलायती शराब की बोतलें मिल जायँगी। ज़रा सोचकर उसने कहा—मगर ये हब्शी लड़कियाँ खाती बहुत हैं! तब तो यह बड़ी महँगी पड़ेगी।

यह तुम कह क्या रहे हो? मैंने तुम्हें कितनी सस्ती दी है! सरायवाली हिसाब समझाने लगी—चमड़े मैंने तुम्हें दिये हैं बालू के भाव। और चने भी ख़ूब सस्ते दिये हैं। अब क्या इस लड़की के लिए ही तुमसे ज्यादा दाम ले लूँगी।

बाधा पाकर जमाल हुसेन को ताव आ गया। उसने कहा—तू ठग है, बदज़ात औरत!

सरायवाली भी कम न थी। वह भी उबल पड़ी। उसने कहा—तू डाकू है, बदमाश कहीं का—गाली देता है?

फिर दोनों में हुज्जत हो गई। इसी शोरगुल में मेरी नींद उचट गई। उठ बैठा।

सोफ़ी मेरी चारपाई के पास फ़र्श पर बैठी थी, ठीक गया के

पत्थरों की मूर्ति सी। रंग स्याही सा काला होने पर भी उसकी गठन में थी चमत्कार, ऐसी, कि किसी भी देश की सुन्दरियों को उसे देखकर ईर्ष्या हो सकती थी। मुँह से बात न करने पर भी उसके समस्त शरीर से एक सजीवता फटी पड़ रही थी। दोनों आँखों में था गंभीर आकर्षण।

मेरे मन में आया, इस अनुपम सौन्दर्य का भोग क्या आखिर को पिशाचों के भाग्य में ही बदा है! उसका इतिहास पूछा। उसने जवाब नहीं दिया, और देती भी तो उसे समझता कौन? उसकी भाषा थी दूसरी।

छुटकारा पाने पर कहाँ जायगी? मैंने जमाल से पुछवाया।

अदिस अबाबा?

वहाँ क्यों?

माँ के पास जाऊँगी।

जमाल हुसेन ने कहा—यह भी कोई बात है! जहाँ जी चाहे जा सकते हैं। भेड़-बकरी से भी भला कोई बात पूँछी जाती है!

तुझे माँ के पास पहुँचा दूँगा, मैंने सोफ़ी को वचन दिया।

पचीस रुपये, एक ऊँट और बिस्किट का एक खाली डिब्बा लेकर आख़िरकार वह सराय-वाली सोफ़ी को मेरे हवाले करने पर तैयार हुई। जमाल ने लिए पाँच रुपये और दो बोतल शराब इनाम के तौर पर।

हम लोग दानाकिल के रास्ते अदिस अबाबा की ओर चल पड़े।

२

इस प्रदेश की सृष्टि करते समय शायद प्रकृति बड़े क्रोध की अवस्था में थी। उस काले पहाड़ की तीक्ष्णाग्र चोटियाँ राक्षस के दाँतों सी ही हिस्र और विकट थीं। अँधेरा इतना कि दिन दोपहर को भी देखने से भय होता था।

आकाश में एक चिड़िया तक नहीं। शायद उन नुकीली चोटियों

में आश्रय का स्थान न पाकर दूर उड़ गई थीं। यहाँ मनुष्य की कीर्ति का भी कोई चिन्ह नहीं है। मेरी आँखें विश्राम खोज रही हैं।

सोफ़ी पसीने में नहा गई है। बालू के कन पसीने में मिलकर उसके मुँह पर चिपक रहे हैं। सूर्य की किरणों में बालू के वे कन चमक रहे हैं। जान पड़ता है किसी ने विवाह के लिए उसे सजाया है। उसके मुख का सौन्दर्य हो उठा है अद्भुत। ज्यादा देर तक देखा नहीं जाता, आँखें पथरा जाती हैं।

शून्य मरुभूमि में उसका आविर्भाव संभव क्यों कर हुआ? हैरत में आकर खुद से पूछता हूँ। जिस विकराल रुक्ष मरुप्रदेश से होकर हमारी यात्रा हो रही है, वहाँ प्रकृति की यह अपरूप-सुकुमार, कमनीय कीर्ति असंभव जान पड़ती है। पर उस कमनीयता के भीतर भी आ गई है अस्थिरता।

स्फूर्ति और उल्लासपूर्ण है सिर्फ़ हमारे कारवाँ का नेता, जमाल हुसेन। ऊँट पर झूमता हुआ मस्त सा आगे-आगे जा रहा है। सिर पर है हरे रंग की पगिया। दाढ़ी उसकी रँगी है मेंहदी के लाल रंग से। रह-रह कर वह एक हाथ में उठा लेता है कीड़ों से खाया हुआ कुरानशरीफ़ और दूसरे में माला। जब-जब वह पगड़ी ढीली करता है तब-तब सिर पर का पसीना बह कर नीचे दाढ़ी के अरण्य में हो जाता है लुप्त। वह एक अपरूप दृश्य था।

पर यह सब होते हुए भी उसकी बकवाद रुकती नहीं। मेरी आँखें सोफ़ी पर देख वह बोला—अरे, छी-छी! वह भी भला कोई देखने की चीज़ है! क्या है उसमें! आदमी नहीं, यह तो मिट्टी की पुतली है, छूते ही फूट जायगी। आगे वाली सराय में देख कर तुम्हारे लिए एक मोटी-तगड़ी ठीक कर दूँगा। अरे हाँ, वहाँ की सरायवाली ही अच्छी ख़ासी है, जैसे पीपा, पर दाम लगेगा ज़रा ज़्यादा। दुनियाँ की कोई चीज़ नहीं है जो न मिले वहाँ। ऊँट, नमक, पानी, खजूर, जो चाहो। क्या जानवर, क्या औरतें, वहाँ सभी तगड़े हैं। अरे जिसके बदन में गोश्त नहीं है वह भी भला ख़ूबसूरत! ख़ास कर

औरत के बदन में अगर गोश्त न हुआ तो कितनी बुरी लगती है और फिर चाहे औरत हो या मुर्ग़, या बकरी, तगड़ा होना ज़रूरी है। हड्डैल लड़कियों को मैं आंख से देख तक नहीं सकता। तुम्हारी सोफ़ी से तो ये खजूर के दरख़्त कहीं अच्छे।

उसने साबित कर दिया कि स्थूलत्व ही है स्त्री-सौन्दर्य की एक मात्र कसौटी और साथ ही मुझे सुनाने लगा इस कसौटी में खरी उतरनेवाली स्त्रियों के साथ अपने यौवन की अनेक प्रणय कहानियां।

मेरे पास रहता था सबसे ख़ूबसूरत ऊँट और टट्टू। औरतें देखने के लिए इकट्ठी होतीं। लोहे और टीन के चमकीले गहने देकर मैं उन्हें बस में कर लेता था। मिट्टी के तेल की एसेन्स उन्हें भेंट करता। मेरी बेहद तारीफ़ करतीं वह। कुछ सुअर इसे बर्दाश्त न कर सकते, मारे हसद के जला करते, मुझे कहते थे डाकू। पर वे हरामजादे भी आख़िरकार मेरी बड़ाई किये बिना न रह सकते। वे कहते अरे कौन, जमाल हुसेन! वह, जो एक बोतल शराब की एवज़ अपना ऊंट दे दिया करता है! पर असल में वे पाजी झूठ बोलते थे। इस तरह की अदल-बदल मैं कभी नहीं करता था। मैं करता था लूट। अहा! जवानी में कितनी लूट की है मैंने और कितने म... उड़ाये हैं! ऊँट तो मैं किसी भी आदमी से दिन-दहाड़े लूट लेता था और औरतें भी कम नहीं लूटीं। उनके साथ एक ही गिलास ...दी, शराब नहीं पीता। क्यों, जानते हो? ये पाजी औरतें घास की त... तो मिर्चें खाती हैं पानी में घोल कर रोटी से, और नमक ही क्या क... खाती हैं। तौबा! तौबा, इसी से हरामजादियों का मुंह हमेशा कड़ुआ रहता है। तौबा! तौबा!

वह थू थू करने लगा। और मैंने कहा, तुम उन्हीं को चुराते थे

चुप शैतान! वह बिगड़ पड़ा, हब्शी औरतों की चोरी को भला चोरी कहते हैं? जमाल हुसेन अपने मनगढ़े दर्शन-शास्त्र की व्याख्या करने लगा। निकाह, तलाक़ या चोरी तो अरबी औरतों की हुआ करती है। हबशी औरतों के लिए भी क्या यही क़ानून

सकता है। हाँ, हबशी औरतों को कभी तंग मत करना, क्योंकि वैसा करने पर उनके गाँव से जान बचा कर निकलना मुश्किल होगा। वहाँ के रिवाज बड़े बुरे होते हैं। सोफ़ी की तरह उन लोगों की खरीद-फ़रोख्त नहीं होती।

कह नहीं सकता सोफ़ी ने अपना नाम सुनकर क्या समझा। उसके ओठों पर मधुर मुस्कान दिखाई दी।

३

हम लोगों के पाँव तले है सिलेट पत्थर। उसके ऊपर ऊँट और टट्टुओं के पाँव डगमगा रहे हैं। हम लोग भी डगमग कर रहे हैं। भयानक प्यास लग रही है। साथ में अब पानी नहीं रहा। हम लोगों में सब से ज़्यादा चेहरा सूख रहा है सोफ़ी का। वह छटपटा रही है, बलिदान के लिए बँधे हुए बकरे की तरह।

वहाँ पानी है—जमाल हुसेन ने दूर की एक झुरमुट दिखाते हुए कहा। वहाँ पर दानकिले वाले रहते हैं। हम लोगों को देखते ही बर्छों से बेध डालेंगे।

प्यास से मरने की अपेक्षा बर्छों से मरना ही उस समय अच्छा लग रहा था। उस झुरमुट के किनारे वाले झरने पर जाकर हम लोगों ने पानी पिया और विश्राम करने लगे। जमाल हुसेन ने राय दी, अरे खुदा पर भरोसा करो और ऊँटों को बाँध दो, सब ठीक हो जायगा।

सोफ़ी के मुँह पर फिर हंसी की रेखा दिखाई दी।

४

चारों ओर देखता हूँ। जहाँ तक दृष्टि जाती है, सिर्फ़ खाक के रंग की मिट्टी। कहीं कहीं कमर तक, कहीं पुरसे भर गहरे गड्ढे। इस तरह के ज्वालामुखी पत्थर पर चढ़ना लँगड़े आदमी का काम नहीं है। शायद यहाँ प्रकृति के ऊपर सृष्टि और प्रलय के बीच युद्ध छिड़ा था, और उसी युद्ध के चिन्हस्वरूप ये गड्ढे मौजूद हैं। निश्चय यहाँ प्रलय की ही विजय हुई थी।

हम सभी थक कर चूर हैं। गरमी के कारण और दानकिलेवा
के भय से किसी की आँखों में नींद नहीं है। यह भय भूतों के डर
भी बढ़ कर है। अन्य देश के लोगों को वह अपने गाँव में घुस
नहीं देते और विदेशी को देखते ही चहेट लेते हैं।

आधी रात को गड़बड़ शुरू हुई। हमारे साथी चिल्ला रहे
"दानकिले वालों ने हमला कर दिया। वह! ख़लीफ़ा को बर्छे से बे
डाला!" ख़लीफ़ा का कराहना सुनाई पड़ रहा है। अँधेरे में कु
दिखाई नहीं दे रहा है। मैंने राइफ़ल माँगी।

सोफ़ी ने सुना। मालूम नहीं उसने क्या समझा। उसने दा
किलों को ताक कर गोली चलाई। दानकिले वालों का आर्तनाद सुन
पड़ा। वे भागने लगे।

सोफ़ी! जमाल चिल्ला उठा, अब ये दानकिले वाले हमें क
खा जायेंगे।

दानकिलों के साथ समझौता कर लेना ज़रूरी है। जमाल
लोगों को लक्ष्य कर चिल्लाया, तुम लोग हमें चले जाने दो, जाने
रास्ता दिखा दो। तुम लोगों का आदमी मरा है उसके गुनहगार
तौर पर हम दो ऊँट और दो बोरे चने देंगे।

पृथ्वी के इस अंचल में मनुष्य के प्राण से ऊँट और चने
मूल्य अधिक है। वे राज़ी हो गये। पर इसके सिवा उन्होंने हम
राइफ़ल माँगी। न देने के सिवा अन्यथा गति नहीं थी।

ज़रा आगे बढ़ने पर जमाल ने हम लोगों को चेतावनी दी
होशियार, ये दानकिले बड़े शैतान होते हैं। उन सा बेरहम दुनि
में कोई नहीं होता। एक जान के बदले में वे हम में से एक की ज
लेंगे ही।

५

सफ़र का आख़िरी पड़ाव। दानकिले राइफ़ल, ऊँट और च
लेकर वापस चले गए। दूसरी ओर दूर पर यूकेलिप्टस पेड़ों के बी
से सफ़ेद मकान दिख रहे थे। इधर सोफ़ी बोल उठी, "अदिस।"

उसके कंठस्वर में था संगीत। यकायक सुनने पर विश्वास नहीं होता। उसकी ओर मैंने देखा। यही तो कोमल श्यामपुष्प सा मुख, और वे आँखें! इनमें इतनी आकर्षण शक्ति कहाँ से आई!

तू कितनी सुन्दर है!—मैंने उसे बताया।

मेरे मन की अवस्था न समझ कर सोफ़ी हँसी।

उस दिन सोने से पहले बहुत देर तक सोफ़ी की मूर्ति मेरी आँखों के सामने नाचती रही।

६

नींद टूटी। इस यात्रा में रोज़ उठते ही सोफ़ी का मुँह देखता था। वह ला देती थी पानी, बिस्कुट और इसके बाद घोड़े की लगाम। आज कहाँ गई वह!

भाग गई, जमाल ने कहा, हबूशी लड़कियाँ इसी तरह दगा करती हैं।

विश्वास नहीं हुआ। नौकरों को उसकी तलाश में भेजा, उनको देर होती देख कर ख़ुद ही निकल पड़ा। एक पहाड़ पर खड़ा होकर देखने लगा। यूकेलिप्टस के जंगलों के ऊपर सूर्य निकल रहा है, ठीक रक्तवर्ण।

अरे, वहाँ क्या हो रहा है! एक पीपल के पेड़ तले दिखा कर जमाल से पूछा।

भूतों का थान, दानकिले वहाँ पूजा करते हैं।

वहाँ जैसे कुछ लोग कनस्टर बजा रहे थे। शोर-गुल भी कम नहीं हो रहा था। ये इतना चिल्ला क्यों रहे हैं, मैंने पूछा।

शायद बलि चढ़ावेंगे।

देखा, सचमुच पेड़ के नीचे एक लड़की बँधी पड़ी थी। ठीक उसको देखा नहीं जा रहा था।

'दुम……'मेरी ही राइफ़ल की आवाज़। धुआँ, ख़ून, आर्तनाद।

जमाल ने उदास हो कर कहा, दानकिलों ने बदला लिया।

७

दौड़ा भूतों के थान की ओर। पहुँचने के पहले ही दानकि भाग चुके थे। किस ओर, यदि जान सकता!

रक्त से सनी धूल पोत कर ख़ीमे में लौटा। मेरे शरीर से गीली मिट्टी और यूकेलिप्टस की बू आ रही है। ख़ीमा उठाने का हुक्म दिया।

घोड़े पर सवार हो साथियों से कहा, ख़ुदा हाफ़िज़!

नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं हुआ। जमाल ने कहा, कोई यादगार छोड़ जाओ।

इनाम। बख़शीश।—और लोग भी शोर मचाने लगे। अपनी सारी संपत्ति उन लोगों को बाँट लेने कहा। वे टूट पड़े सामानों पर। उन लोगों की ओर पलट कर न देख कर ही बढ़ चला। अंतिम बार कहा, ख़ुदा हाफ़िज़!

किसी ने जवाब नहीं दिया।

बदनाम

'क्रिं—क्रिं—क्रिं—', साइकिल घंटी की आवाज़; सदर दरवाज़े के पास कूद कर उतरे इन्सपेक्टर विजय बाबू। बदन में आधी बाँह वाली कमीज़, हाफ़पैंट, बेल्ट लगा हुआ, चाल कामकाजी लोग जैसी फुर्तीली। दरवाज़े की कुंडी खटखटाते ही गृहिणी ने आकर खोल दिया। पर उनके घर में घुसते ही वह उबल पड़ीं—"अब इस तरह से हमसे नहीं चलेगा। रोज़ रात-रात भर खाना परोसे कौन बैठा रहेगा? कितने चोर-डाकू तुमने पकड़े, साधु-सज्जन को भी न छोड़ा, पर इस छोकरे अनिल मित्तर ने तुम्हें अच्छा छकाया। जनाब रात-दिन उसका पीछा करते फिरते हैं पर वह तुम्हारी नाक के नीचे से

निकल जाता है तुम्हें अँगूठा दिखाता हुआ। तुम्हारी इस फ़जीहत से लोगों का हँसते-हंसते बुरा हाल है, माना कोई सर्कस का खेल चल रहा है।" इंसपेक्टर बोले—"मेरे ऊपर उसकी इतनी नेक नज़र है, यह मेरी ख़ुशक़िस्मती है। असामी चलता-पुरज़ा ज़रूर है, मगर पुलीस में रिपोर्ट किए बिना तो कहीं जाने का हुक्म नहीं है, इसी से चिट्ठी द्वारा मुझे बता गया कि, 'दरोग़ा जी, डरियेगा नहीं, सभा का काम ख़त्म कर मैं आ जाऊँगा।' पर कहाँ उसकी सभा है, कुछ पता नहीं। पुलीसवालों पर नज़रबन्दी का जादू मानो चल गया है।" श्री सौदामिनी ने कहा, "सुनो आज की ख़बर बताती हूँ, तुम्हारे होश दुरुस्त हो जाएँगे, कितना गुस्ताख़ है! कितना बड़ा कलेजा है उसका! रात के दो बजे होंगे उस वक़्त, मैं तुम्हारा खाना रक्खे बैठी इंतज़ार कर रही थी, ज़रा झपकी भी आने लगी थी। यकायक चौंक कर देखती क्या हूँ कि तुम्हारा अनिल डाकू मेरा पैर छू रहा है और कह रहा है—'दीदी, आज भैया-दूज का दिन है, याद है? टीका लेने आया हूँ, मेरी अपनी दीदी चटगाँव में जाने किस चक्कर में पड़ी है, मगर टीका तो मैं लूँगा ही, हरगिज़ न मानूँगा, ये बैठा।' ......सच बताऊँ तुमसे, मेरे मन में स्नेह उमड़ आया। जान पड़ा एक रात के लिए मुझे भाई मिला। उसने कहा, 'दीदी, आज तीन दिन से जंगलों में मारा-मारा फिर रहा हूँ। खाने-पीने का कोई ठिकाना नहीं। आज तुम्हारे हाथ का टीका और तुम्हारे हाथ का खाना खाकर कृतार्थ हूँगा।' तुम्हारे लिए जो रोटियाँ रक्खी हुई थीं वही उसे प्रेम से खिलाई। बोली—'अब तुम भागो, उनके आने का वक़्त हुआ।' पर उसने कहा, 'कोई चिन्ता नहीं, वह मेरी तलाश में चीतलबेड़े गए हुए हैं, लौटने में कम से कम तीन बजेंगे। मैं कुछ सुस्ता कर तुम्हारी चरण-रज लेकर जा सकूँगा।' यह कह कर तुम्हारे लिए बनाए हुए पान निकाल कर बिलकुल बेतकल्लुफ़ी से खाने लगा, फिर बोला, तुम्हारे इन्स्पेक्टर साहब हेवाना चुरुट पीते हैं, उसी में का एक मुझे लाओ, मैं पीता हुआ जाऊँगा जहाँ मेरी पार्टी के सब

लोग हैं, वे आज मीटिंग कर रहे हैं।' तुम्हारे इस डाकू ने बेखौ उस जगह का नाम बता दिया।"

इन्सपेक्टर साहब ने कहा, "क्या मैं भी जान सकता हूँ उ जगह का नाम ?"

सदू बोली, "तुम्हारे इस प्रश्न से स्पष्ट है कि तुम्हारे असा ने मुझे पहचाना था पर तुम मुझे आज भी न पहचान सके। जो ह पर मैंने तुम्हारे बड़े शौक की वह एक चुरुट उसे दी थी। उसने ब इतमीनान से उसे जला कर मेरी पद-धूलि ली और धुँआ उड़ाता हुअ चला गया।

विजय बाबू बैठे हुए थे, उछल कर खड़े होते-होते बोले, "बता न किधर गया वह ? कहाँ उनकी मीटिंग हो रही है ?"

सदू उठकर गर्दन तिरछी करती हुई बोली, "क्या ! ऐसी बा तुम्हारे मुँह से निकली ? मैं तुम्हारी स्त्री हूँ तो क्या इसके मानी य है कि मुझे पुलीस के जासूसों का काम करना होगा ? तुम्हारे घर आकर यदि मैं धर्म खो बैठूँ तो तुम्हीं क्या मेरा विश्वास करोगे ?"

इन्स्पेक्टर साहब अपनी बीबी को ख़ूब पहचानते थे। बड़ कठिन स्त्री। उसका हठ नरम होना नहीं जानता। हताश हो बैठते बैठते लंबी साँस लेते हुए बोले, "हाय रे—यह मौक़ा भी हाथ निकल गया।" बैठे बैठे अपनी नवाबी मूँछों पर ताव देते हुए रह रह कर अधैर्य होकर फुफकारने लगे। उनके लिए दुबारा बनाई हु खिचड़ी उन्हें नहीं जँची।

यह हुआ इस कहानी का प्रथम अध्याय।

द्वितीय

सदू ने स्वामी से कहा, "क्यों जी, तुमने तो नाच शुरू कर दिया आज ज़मीन में पाँव नहीं पड़ रहे हैं। डिस्ट्रिक पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट की शाबाशी तो नहीं मिली ?"

"मिलेगी कैसे नहीं !"

'किस तरह, ज़रा सुनें तो।'

"हम लोगों का चर, निताई चक्रवर्ती, इन लोगों के पीछे लगा हुआ है, अर्से से

में उनकी एक ब

ज़ाम हो रहा है

भेज कर आनन

भाग न सकेंगे।

"तुम लोग

रहेगी। बहुत व

बख्शो।"

"यह क्या

"मैं जो क

यह सब वाहिय

मँडराया करता

जायगा, यह मैं

"सो तुम

"देखो, य

भरकर करो, कि

बात दब गई औ

"सदू, मैं

बरदाश्त कर स

"सो तो ठ

खा लोगे कि नहीं

"सो तो ल

गया है!"

"देखो, मैं

कानाफूसी करते हो इसे अगर जान पाती तो उन लोगों को ख़बर कर देना अपना कर्त्तव्य समझती।"

लोग हैं, वे आज मीटिंग कर रहे हैं।' तुम्हारे इस डाकू ने बेखौ
उस जगह का नाम बता दिया।"

...जान सकता हूँ

...क तुम्हारे असा...
...चान सके। जो...
...ी थी। उसने ब...
...धुँआ उड़ाता हुआ

...होते बोले, "बता...
...?"

"क्या! ऐसी बा...
...ा इसके मानी या...
...? तुम्हारे घर...
...श्वास करोगे?"

...हचानते थे। व...
...हताश हो बैठते
...मौक़ा भी हाथ...
...ताव देते हुए रह...
...दुबारा बनाई हु...

...च शुरू कर दिया।
...ीस सुपरिन्टेन्डेन्ट

की शाबाशी तो नहीं मिली ?'

"मिलेगी कैसे नहीं !"

'किस तरह, ज़रा सुनें तो।"

"हम लोगों का चर, निताई चक्रवर्ती, इन लोगों के पीछे लगा हुआ है, अर्से से। आज उसने खबर दी है कि मोचकाठी के जंगल में उनकी एक बहुत बड़ी सभा होगी। उस पर घेरा डालने का इन्तज़ाम हो रहा है। जंगल काफ़ी बड़ा है। हम लोगों ने पहले से सर्वेयर भेज कर आनन-फ़ानन उसका सर्वे भी करा लिया है। अब कहीं से भाग न सकेंगे।"

"तुम लोगों की अक़्ल के बीच निकल भागने की काफ़ी गुञ्जायश रहेगी। बहुत काफ़ी हँसी करा चुके हो, अभी जी नहीं भरा? अब बख्शो।"

"यह क्या कह रही हो सदू? ऐसा मौक़ा कभी नहीं मिलता!"

"मैं जो कहती हूँ, मेरी बात मानो; वह मोचकाठी का जंगल? यह सब वाहियात बातें हैं। वह तुम लोगों के मकानों ही के आसपास मँडराया करता है। तुम लोगों के मुँह पर थप्पड़ मार कर वह निकल जायगा, यह मैं कहे रखती हूँ।"

"सो तुम अगर छिपकर खबर देती फिरो तो क्यों न भागेगा।"

"देखो, यह मज़ाक रहने दो। यों दिल्लगी करना हो, खूब जी भरकर करो, किया भी है बहुत, पर अपनी ही बीबी के बारे में—"

बात दब गई और साथ ही आँचल मुँह पर आ गया।

"सदू, मैं देखता हूँ कि इस एक मामले में तुम मज़ाक तक नहीं बरदाश्त कर सकती।"

"सो तो ठीक है, पुलीस का मज़ाक भी काटता है। अभी कुछ खा लोगे कि नहीं, बोलो?"

"सो तो लूँगा ही; अभी वक़्त है। सब एकदम ठीक-ठीक हो गया है!"

"देखो, मैं सच बात ही कहूँगी। तुम लोग जो आपस में कानाफूसी करते हो इसे अगर जान पाती तो उन लोगों को खबर कर देना अपना कर्त्तव्य समझती।"

"ग़ज़ब हो गया ! क्या, कुछ सुन तो नहीं लिया तुमने !"

"तुम लोगों की दुनियाँ में आँख-कान खोले ही रखना पड़ता है, कुछ बातें ज़रूर ही कान में पड़ जाती हैं।"

"अच्छा माना, पड़ जाती हैं, इसके बाद ?"

"उसके बाद चंडीदास ने जैसा कहा है—'कानेर भितर दिया मरमे पशिल गो, आकुल करिया दिल प्राण।'"

"तुम्हारे इस मज़ाक से आफ़त है। समझ में नहीं आता कौन तुम्हारा मज़ाक है, और कौन असली है।"

"यही इतना समझने की अक्ल अगर तुममे हो तो तुम पुलिस की दरोग़ागिरी आज न करते होते। इससे बड़े काम में ही सरकार तुम्हें लगाती। व्याख्यान दे-दे कर देश-विदेश में जाल फैलाते।"

"सर्वनाश ! जिस औरत के बारे में ख़बर उड़ रही है, देखता हूँ वह हमारे ही घर की है।"

"ये देखो, कुत्ता बिचारा चिल्ला-चिल्लाकर जान दे रहा है, उसे खिला कर चुप करती आऊँ।" इन्स्पेक्टर साहब बहुत बिगड़ कर बोले, "मैं पिस्तौल की एक गोली बैठाये देता हूँ इसके पेट में।" सदू ने स्वामी का कपड़ा पकड़ कर खींचते हुए कहा, "नहीं नहीं, तुम नहीं जाने पाओगे।"

"क्यों।"

"तुम्हें सामने देखते ही वह तुम्हारे ऊपर टूट पड़ेगा, बड़ा ख़ौफ़नाक जानवर है। वह सिर्फ़ हमी को पहचानता है।"

"एक ख़बर मिली है सदू, हरामजादा अनिल सब जन्तुओं की बोली बोल लेता है। इसका भी क्या ठीक कि रोज़ रात को बारह बजे कुत्ते की शक्ल में वही न तुम्हें बुलाया करता हो।"

सदू एकदम जल उठी, बोली, "एँ, मुझ पर संदेह ! अच्छा, तुम गृहस्थी सँभालो, मैं चली अपने बहनोई के यहाँ।" यह कहती हुई वह उठ खड़ी हुई।

"अरे यह तो बड़ी मुश्किल है, अपनी ही बीवी से मज़ाक नहीं !

करूँ ! इसके लिए दूसरे को खोजो कहाँ से लाऊँ ? और अगर कोई मले भी तो घर में जो महाअशांति हो जायगी।" यह कह कर धर-पकड़ कर इसे बैठाया।

सदू सिर्फ़ आँख पोंछने लगी।

"ओफ़ ! पागलपन कर रही हो ज़रा सी बात पर।"

"नहीं तुम्हारी ऐसी बातें मुझसे नहीं सही जायँगी। यह मैं कहे रखती हूँ।"

"अच्छा, अच्छा, बस, हुआ—अब तुम इतमीनान से अपना कुत्ता खिला आओ। मगर कटलेट बिना तो वह खाता ही नहीं, बग़ैर पुडिंग के जनाब का पेट नहीं भरता। मामूली एक कुत्ते के लिए तुम इतना क्यों परीशान होती हो, समझ में नहीं आता।"

सदू बोली, "तुम मर्द लोगों की समझ में यह बात नहीं आ सकती ! पुत्रहीन स्त्री के हृदय में जो स्नेह जमा रहता है वह कोई एक प्राणी मिलते ही उसे अपनी ओर खींच लेता है। एक दिन अगर उसे नहीं देखती तो डर लगता है, कोई उसे पकड़ तो नहीं ले गया। इसी डर से मैं उसे इतने यत्न से ढँक-तोप कर रखती हूँ।"

"पर मैं यह कहे रखता हूँ सदू, कोई भी जानवर इतना आदर पाकर ज्यादा दिन बच नहीं सकता।"

"अच्छा तो जितने दिन जिये अच्छी तरह जिये।"

विजय बाबू आराम करने लगे। इसी बीच पुलीस का दलबल पहुँचा। अलग-अलग रास्तों से सब माचकाठी की ओर बढ़े ! दूर का रास्ता, आने जाने में रात बीत चली। दूसरे दिन सुबह सात-आठ बजे के क़रीब सूखा सा मुँह लेकर विजय बाबू लौटे और तुरंत आरामकुर्सी पर लेट गये। बोले "सदू, बड़ा धोका दिया बदमाशों ने, तुम्हारी बात ठीक निकली। पुलिस ने जंगल घेरा पर उसमें न आदमी न आदमज़ात। हल्ला मचाया गया। कहा, जो हो निकलो, नहीं गोली चलाते हैं। बहुत सी झूठी गोलियाँ दगीं, पर कुछ जवाब नहीं ! पुलिस वाले बड़ी होशियारी से बन में घुसे, राई-रत्ती छान

डाला। तब तक सवेरा हो गया। हल्ला हुआ, 'पकड़ो इसी बद
निताई को', पर वह अंतर्ध्यान था।"

एक चिट्ठी मिली, सिर्फ एक लाइन—"असामी निरापद!
को मेरा प्रणाम कहियेगा। अनिल।"

"देखो तो तमाशा, इसमें तुम्हारा नाम भी फँसाया गया
आखिर को—"

"आखीर को क्या? पुलिस के घर की गृहिणी क्या असामी
दीदी नहीं हो सकती?" संसार के प्रत्येक संबंध पर क्या सर
मुहर लगी हुई है। मैं और कुछ नहीं कहूँगी। अब तुम जरा
थोड़ा सो लो।"

नींद खुलने पर दोपहर हो चुकी थी। स्नान भोजन कर
खाते-खाते विजय ने कहा, "उस शख़्श की चालाकी की बात मैं
तुमसे बताऊँ। वह अपने दलबल के साथ चारों ओर प्रोपेगैंडा
फिर रहा है और खुद सुबह रात कुंभक प्राणायाम करके शू
आसन जमाता है—कहते हैं, लोगों ने खुद अपनी आँखों ऐसा
हैं। गाँव के लोगों पर यह विश्वास जमा दिया है कि वह एक
पुरुष है, बाबा भोलानाथ का चिन्ह उस पर है। उसके बदन में
लगावे, ऐसा हिन्दू आज कोई नहीं। लोग अपने घरों के
पर उसके लिए खाना रख देते हैं—मानों देवता का नैवेद्य हो। स
उठकर देखने पर उसका कोई चिन्ह नहीं रहता। हिन्दू पहरेदा
उसके नाम से थर्राते हैं। एक दरोग़ा ने हिम्मत कर के हिजला
के दंगों के बाद उसे गिरफ़्तार किया था। एक हफ़्ते के अन्द
इसकी स्त्री चेचक में मारी गई। इसके बाद फिर प्रमाण का
अभाव नहीं रह गया। इस बार जब मोचकाठी के जंगल में
कोई पता न चला तो पहरेवालों ने यह तय किया कि वह इच्छानु
अपने को लोप कर सकता है। इस बात का एक प्रमाण भी वह
गया है—एक जगह गीली जमीन पर उसके पाँव के निशान
दो-दो हाथ के फ़ासले पर एक-एक पाँव—डेढ़-डेढ़ हाथ लम्बे!

हरे वाले उन्हीं पदचिन्हों पर लोट पड़े और क्या! इस शख्श को पकड़ना एक टेढ़ी खीर हो गई है। सोचता हूँ, मुसलमान सिपाही तैनात करूँ। पर देश की हवा के असर से मुसलमानों को भी छूत लगी तो ग़ज़ब हो जायगा। अखबार वालों ने मोचकाठी में अपने रिपोर्टर भेजने शुरू कर दिये थे—किस क़रार असामी के इतने बड़े पाँव मिले हैं. इसी तरह की आलोचनाएं निकल रही हैं। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। इधर पीछे-पीछे प्रापेगैंडा चल ही रहा है, जगह-जगह पर तरह-तरह के गुल खिल रहे हैं। कहीं महादेव की एक अच्छी जटा मिली है और उसे पाकर हमारा एक कानस्टेबल गद्गद् हो उठा है। वह सन की जटा है यह बात सोचने का किसी को साहस ही नहीं होता। इसी बीच तरह-तरह की गप्पों का बवंडर भी उठ रहा है। मोचकाठी के उन्हीं पदचिन्हों पर एक मन्दिर बन-वाने के लिए एक मारवाड़ी तीस हज़ार रुपया दान दे बैठा। देश का सारा वातावरण मानो गाँजे के धुएँ में गूँज उठा है। एक भक्त और मिले हैं जो पहले डिस्ट्रिक्ट जज थे। उनके पास बैठ कर अनिल डाकू शिव-संहिता की व्याख्या सुनाता है। आदमी ज़रा पढ़ा-लिखा है। इस तरह उसकी भक्ति की शोहरत बढ़ रही है। इस दफ़ा 'बेल' की मियाद पूरी होने पर उसके ख़िलाफ़ गवाह मिलना असम्भव हो पड़ेगा। इस अनिल डाकू को लेकर मैं बुरा फँसा।

"सदू, शायद तुम जानती हो, इधर एक संकट और खड़ा हुआ। मेरा एक ममेरा भाई, गिरीश, हाथीबाँधा परगने में दरोग़ा-गिरी करता है। कर्त्तव्यवश उसे एक कुलीन ब्राह्मण के हाथ में हथकड़ी पहनानी पड़ी। बस, तब से गाँव के लोगों ने बिचारे को बिरादरी से ही अलग कर दिया। इधर उसकी लड़की की शादी की उमर बीतती जा रही है। यदि कोई पात्र ठीक होता भी है तो गाँव के लोग उसे भड़का देते हैं। और किसी तरह यदि पात्र तैयार भी होता है तो पुरोहित नहीं मिलता। किसी दूर के गाँव से अगर कोई पुरोहित भी किसी तरह जुटाया गया तो वह गाँव तक पहुँचते-पहुँचते भाग खड़ा

होता है। अभी-अभी एक तरक़ीब निकाली है। वृन्दावन से आ एक बाबाजी ने हमारे हेड् कान्स्टेबल के यहाँ आसन जमाया यकायक। हम सब मिल कर उसे खिला-पिला कर प्रसन्न कर रहे हैं वह, सदू, ब्राह्मण भी है। उसे तैयार किया गया है इस काम लिए। इसे गाँव के लोगों से ज़रा बचा रखना होगा। सदू, तुम्हें इस काम में मदद देनी होगी।"

"क्या ख़ूब, मदद दूँगी क्यों नहीं, यह तो मेरा कर्त्तव्य है। आहा, बिचारी गिरीश की लड़की, हमारी मिनू। उसने तो अपराध नहीं किया। उसका ब्याह तो होना ही चाहिए। तुम उन वृंदावनवासी महाराज को यहाँ लिवा लाओ। मैं जानती हूँ साधु-महात्माओं की सेवा कैसे की जाती है।"

आये वृंदावनवासी। नारदमुनि की तरह सीने पर सफ़ेद दा लहरा रही है भक्ति के आवेश से। गदगद हो सदू उनके चरणों लोट पड़ी। मुहल्ले वालों का उसकी दंडवतों का ताँता देख कर हँस हँसते बुरा हाल हो रहा था। प्रवीण पड़ोसिनें कहने लगीं, "सा महात्माओं में इतना प्रेम तुम्हें यकायक कब से उमड़ने लगा।"

सदू हँसती हुई कहती, "ज़रूरत पड़ने ही से भक्ति उमड़ पड़ है। पद-धूलि लेने से बाबा लोग बिह्वल जाते हैं। मिनू की शादी मुझे अपनी भक्ति को बचा रखना होगा।"

गंभीर शंख-ध्वनि और तुमुल आनंद-ध्वनि के बीच वर-देव की सवारी आ पहुँची। गुड़िया सी सजा कर कन्या मंडप में गई। निर्विघ्न कार्य समाप्त हुआ। वर-वधू बाबाजी को प्रणाम कोहबर में जाने के लिए उठे। तब बाबाजी ने आशीर्वाद पूरा कर विजय बाबू और वहाँ उपस्थित सब को संबोधन करते हुए बो "महाशयो, मैं अब अपना परिचय देता जाऊँ तो अच्छा। पुरोहि का काम मेरा पेशा नहीं। मेरा पेशा आपके दारोग़ा, कान्स्टेबल वग़ैर ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं। अब आप लोगों के पुरोहित की दक्षिण देने का समय हुआ। पर उतनी देर तक मुझ से रुका नहीं जायगा

अतएव आप लोगों के विदा देने के आगे ही मैं रुख़सत होता हूँ।" यह कह कर सब के सामने बाबाजी ने दाढ़ी-मूछ फेंक, असाधारण फ़ुर्ती के साथ चंडी-मंडप फाँद कर नौ-दो ग्यारह। लोग मुँह बाए देखते ही रह गये। विजय बाबू को काटो तो ख़ून नहीं।

शादी की दावत ख़त्म हुई। रान परोसी अपने-अपने घर चले। वर-वधू कमरे में विश्राम कर रहे हैं। सदू ने स्वामी से कहा, "तुम सोच क्या रहे हो? जैसे-तैसे काम तो हो ही गया। बाबाजी ने अंतर्ध्यान होकर तुम्हीं लोगों का बोझा हलका किया। शादी की बाक़ी रस्मों को पूरी करने की फ़िक्र करो, चोर-डाकू के पीछे समय नष्ट मत करो। पर 'उस' औरत का कोई पता लगा?"

"अजब हैरान हैं हम लोग, अब एक औरत की जगह रोज़ २०-२५ औरतें थाने के सामने हाज़िर हो रही हैं, सीधा, चावल और मिष्टान्न लेकर। इन में से कौन 'वह' है, पता लगाना बड़ा कठिन हो रहा है।"

"यह क्या! तुम्हारे दरवाज़े पर इतनी औरतों का आना तो ठीक नहीं। क्या तुम बाबाजी बन कर वहाँ बैठते हो?"

"नहीं, उस शख़्स की चालाकी की बात ज़रा सुनो, तुम हैरत में आ जाओगी। एक दिन यकायक किशन लाल ने ख़बर दी कि दफ़्तर के सामने सड़क पर एक पत्थर निकला है। गाँव की औरतें वहाँ जुट कर उसमें सिंदूर पोतती हैं, चन्दन पोतती हैं, नहलाती हैं, फूल चढ़ाती हैं, जाने क्या-क्या करती हैं। कोई संतान माँगती है, कोई स्वामी का सौभाग्य, और कोई मेरा सर्वनाश! इस भीड़ को हटाने की चेष्टा करते ही अख़बार वाले कोहराम शुरू कर देंगे कि अब हिन्दू धर्म गया, गया! हमारे थाने के हिन्दू सिपाही सवा रुपया करके वहाँ भेंट चढ़ाते हैं। रोज़गार चमक उठा है। ये रुपये डकारता कौन है, आख़िर इस ओर भी निगाह गई। एक दिन देखा गया—वहाँ न है वह पत्थर, न रुपयों से भरी थाल। और वह पागलों जैसी सूरत वाला आदमी भी जामा बदल कर किधर ग़ायब

हो गया इस सम्बन्ध में भी तरह-तरह की गप्पें उड़ने लगीं। मुश्किल यही है कि ये हिन्दू धर्म के पहरेदार बात-बात में हंगरस्ट्राइक की धमकी देते फिरते हैं। इसी बात को लेकर अगर शांतिभंग हो तो जवाबदेही करते-करते हमारी जान पर बन आयेगी। और एक दूसरा उत्पात शुरू हुआ है। थाने के फाटक पर एक दिन छेदी बेतहाशा भागता हुआ आया और धड़ाम से गिर पड़ा। हाय-तौबा मचाता हुआ बोला, भोलानाथ के एक सींग वाले भृंगी बाबा ने साँड़ की तरह दहाड़ते हुये उसे खदेड़ा था। वह तो काम छोड़ चला गया, साधु होकर पेड़ के नीचे बैठा-बैठा गाँजे की दम लगाया करता है। अब आदमी मिलना मुश्किल हो रहा है। अब हम लोग उससे पार नहीं पा सकते क्योंकि औरतें उसकी मददगार हैं। उसने उन सभों को वश में कर रक्खा है।"

सदू ने हँस कर कहा, "मैं जितना ही उसकी गप्पें सुनती हूँ मेरा मन टलमल करने लगता है।"

"देखो, कहीं सर्वनाश न कर बैठना।"

"नहीं, तुम्हें घबराने की ज़रूरत नहीं है, मेरे ऐसे नसीब कहाँ! औरतों को चातुरी से घर-गिरस्ती चलानी पड़ती है, और वही यदि देश-सेवा में लगाई जाय तो सोलह आना काम आ सकती है। मर्द बेवकूफ़ हैं, वे हमें सरला, अबला, कहते हैं—इसी नाम की आड़ में हम लोग साध्वीपना किया करती हैं और ये 'लल्ला के बाबू' लोग मुग्ध हो जाया करते हैं। हम लोग अबला, अखला, कुत्ते के गले की जंजीर की तरह इस ख्याति को गले में पहने रहती हैं और तुम लोग हमें अपने पीछे-पीछे खींचा करते हो। पर सच्ची बात क्यों नहीं कहते कि तुम लोग भी धोका खा सकते हो। सुयोग पाकर हम-लोग भी धोका दे सकती हैं। हम लोग इतनी बेवकूफ़ नहीं हैं कि सिर्फ़ धोका खा सकें और दे न सकें। बूढ़ी औरतें कहा करती हैं कि सदू बड़ी लक्ष्मी है अर्थात् राँधने, परोसने, घर साफ़ करने में सदू थकती नहीं। बस, इतने ही में हम लोगों की बड़ाई है। देश के

लोग भूखों मर रहे हैं और जो लोग सचमुच मर्द हैं उनके हाथ में हथकड़ी पड़ रही है, इधर हम लोग रसोई-पानी, चौका-बरतन करके सती-साध्वीपना दिखला रही हैं। हम लोग अलक्ष्मी होकर यदि सचमुच का कोई काम कर सकें तो बड़ी बात हो, इतना मैं तुम से कह रखती हूँ। हम लोगों का छद्म-वेश हटा कर यदि देखो, तो देखोगे कि कहीं थोड़े कलंक का चिन्ह है तो साथ ही ज्वलंत अग्नि से दागने का भी चिन्ह है। सिर्फ़ आराम से खेलने का चिन्ह नहीं है। मारा है किन्तु मर चुकी है उसके बहुत आगे। संसार में स्त्रियाँ दुःख का कारबार करने ही आई हैं। उस दुःख को मैं केवल घर-गृहस्थी के काम में ही स्वाहा नहीं कर दे सकती। मैं चाहती हूँ, इसी दुःख की अग्नि में देश का सारा जमा हुआ कूड़ा-करकट जला देना। समाज हमें सती भी न कहेगा, साध्वी भी न कहेगा—कहेगा, 'वाहियात औरत'। इस कलंक के तिलक की छाप पड़ेगी तुम्हारे मस्तक पर और तुम यदि सचमुच मनुष्य हो तो इनका गौरव समझोगे।"

"तुम्हारे मुंह से इस तरह की बातें मैंने बहुत सुनी हैं। इसके बाद देखता हूँ कि संसार जैसा चलता था वैसा ही चल रहा है। बीच-बीच में मन ख़ुलासा करना जरूरी होता है, इसी से सुनता हूँ और देवाना चुरुट पीता जाता हूँ।"

"जो हो, मैं चाहे जो कुछ भी करूँ, तुम अन्त में हमें क्षमा करोगे ही, और यही क्षमा यथार्थ पुरुष का लक्षण है, जैसे श्रीकृष्ण के सीने में भृगु का पद-चिन्ह। तुम्हारी क्षमा ही से तो मैं हारी हूँ। झूठी तारीफ़ नहीं करूँगी—पुलीस के काम में तुम्हारी सतर्कता की सीमा नहीं है पर मेरा तुम आँख मूँद कर विश्वास करते आये हो, हालाँ कि सब समय उस विश्वास की योग्यता मुझ में नहीं थी। मैं इसीलिए तुम्हारी भक्ति करती हूँ। मेरी भक्ति शास्त्र के अनुसार गढ़ी हुई नहीं है।"

"सदू, और क्यों, भर पेट जो कहना था सो तो कह चुकीं। अब तुम उस कुत्ते को खिलाने जाओ; बहुत चिल्ला रहा है वह,

मुझे सोने नहीं देगा। मैं सोचता हूँ कि मुझे अब छुट्टी की दरख्वास्त देनी पड़ेगी।"

सदू हँस कर बोली—"तुम इन्स्पेक्टरी छोड़ कर किसी दरख्त के नीचे बाबाजी बन कर बैठो, तुम्हारी आमदनी बढ़ जायगी और मेरा भी हिस्सा उसमें लगेगा।"

"सभी बात में तुम निश्चिन्त होकर बैठती हो। बस, यही मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"यह मेरा स्वभाव है। तुम्हारे ख़ूनी डाकुओं के लिए मैं चिन्ता न कर सकूँगी। अकेली तुम्हारी चिन्ता से मेरा दिन कट गया। समस्त देश के लोग की हँसी में न शामिल होकर मैं और करूँगी ही क्या। तुम्हारे इस पुलीस के थाने पर स्वदेशी वालों को लेकर काफ़ी अश्रु-जल बह चुका है। इतने दिन बाद आदमी को एक बार हँसने का मौक़ा मिला है। इसीलिए अनिल बाबू को सब लोग दोनों हाथों से आशीर्वाद दे रहे हैं—तुम्हें छोड़ कर। मैं दुःश्चिन्ता का मान कैसे करूँ, तुम्हीं बताओ ?"

तृतीय

"देखो सदू, अबकी मैं तुम्हारी शरण आया हूँ।"

सदू ने कहा, "कब तुम मेरे शरणापन्न नहीं थे; ज़रा सुनो तो! इसीलिए तो सब लोग तुम्हें स्त्रैण्य कहा करते हैं। पर दो तरह के स्त्रैण्य होते हैं—एक दल पुरुष का ऐसा होता है जो स्त्री की शक्ति के सामने हार न मान कर रही नहीं सकता। यह हैं कापुरुष। और एक दल ऐसा है जिसमें सचमुच पुरुष होते हैं। यह लोग निःसंकोच रूप से स्त्री से हार मान ही लिया करते हैं। यह अविश्वास करना जानते ही नहीं, क्योंकि ये बड़े होते हैं। यह देखो न, हमारी कितनी बड़ी सुविधा है। जब जैसी ख़ुशी, तुम्हें धोका दे सकती हूँ और तुम आखें बन्द किये रहते हो।"

"सदू, तुम कितनी साफ़-साफ़ बात करती हो!"

"सो तुम्हारे ही गुण से नाथ, वह तुम्हारे ही गुण से······"

"अब ज़रा काम की बात सुनो, यह सब फिर होता रहेगा। अबकी दफ़ा एक सरकारी काम में तुम्हारी मदद चाहिए, नहीं तो मैं मुँह दिखाने लायक नहीं रहूँगा। पुलीस वालों को यह निश्चय हो गया है कि यहीं, तुम्हारे मकान के आस ही पास, कोई औरत रहती है। वही यहाँ की खबरें मालूम कर उसे सावधान कर दिया करती है और वह बच जाता है। वह बड़ी तिकड़मी औरत है। उन लोगों का कहना है कि वह इसी मुहल्ले की कोई विधवा औरत है। चाहे जैसे हो, उसका पता लगा कर तुम्हें उसके साथ दोस्ती करनी होगी।"

सदू ने कहा—"आखिरकार मुझे भी तुम्हारे लिए जासूसी करनी पड़ेगी ? औरत के द्वारा औरत पकड़ी जायगी. नहीं तो तुम्हारी मान रक्षा भी न होगी। मैंने यह भार लिया। दो दिन में सारा रहस्य खुल जायगा।"

"परसों है शिवरात्रि। खबर मिली है अनिल डाकू सिद्धेश्वरी-त्तला के मंदिर में जप-तप करके रात काटेगा। उसके मन में तो भय-डर कहीं है नहीं। इधर वह बड़ा धार्मिक भी है न। वह औरत रहेगी वहाँ, तांत्रिक मत से उसकी स्त्री होकर।"

"तुम पुलीस वाले आड़ में छिप कर रहना। मैं पकड़ दूँगी। मगर रात एक बजे से पहले मत जाना। शोरगुल मचाने से सब बिगड़ जायगा।"

अमावस्या की रात। एक बजा है। नंगे पाँव दो-एक लोग इधर-उधर टहल रहे हैं। विजय बाबू मन्दिर के फाटक के पास। किसी ने चुपचाप इशारे से उनको बुलाया और धीरे-धीरे कहा—"वह देवी जी आज मन्दिर में आई हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, वह कोई विख्यात योगिनी भैरवी हैं। दिन में कोई उनको देख नहीं सकता। पता चला है कि आज रात एक बजे नटराज के साथ उनका नृत्य होगा। एक शख्स ने उन्हें इत्तेफ़ाक से देख लिया

था, वह पागल होकर चारों ओर घूम रहा है। हुज़ूर, हम लोग मंदिर में जाकर इन देवी जी के शरीर को स्पर्श नहीं कर सकेंगे, यहाँ तक कि आँख से देख भी न सकेंगे—यह कहे रखते हैं। लोगों ने यह तै किया है कि बैरक लौट जायँगे, आप अकेले जा कर सकेंगे, करें।"

एक-एक कर के वह सब चले गये—निःशब्द, सब चुपचाप। ज़ोर की ठंडी हवा बह कर पेड़ों से एक अजीब 'सीं-सीं' का शब्द पैदा कर रही थी। विजय बाबू चाहे कितने साहसी क्यों न हों पर उन्हें डर नहीं लग रहा था, यह नहीं कहा जा सकता। उनका सीना धड़क रहा था उस समय। दरवाज़े के पास ज़नानी आवाज़ से कोई गुन-गुना कर गा रहा था—

"ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्"

विजय के शरीर में मानो काँटे चुभने लगे। सोचे कि क्या करना चाहिए। एक दफ़ा हिम्मत कर दरवाज़े पर धक्का दिया। टूटा दरवाज़ा खुल गया। भीतर एक मिट्टी का चिराग़ टिमटिमा रहा था। देखा कि श्रीलिंग के सामने उनकी स्त्री हाथ जोड़ कर खड़ी है और उसके एक ओर अनिल पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा है। अपनी स्त्री को देख कर मन में साहस हुआ, बोले—"सदू, आख़िर-कार तुम्हारा यह काम!"

"हाँ, मैं ही वह औरत हूँ जिसे तुम लोग इतने दिन से खोजते फिर रहे हो। आज अपना परिचय दूँगी, यही सोच कर यहाँ आई हूँ। तुम तो जानते हो कि हमारे देश में एक या दो ही सचमुच का पुरुष दिखलाई पड़ता है। तुम लोगों की एकमात्र चेष्टा है, इन लोगों को बिल्कुल निर्जीव कर देना। हम, देश की स्त्रियाँ, यदि इन की रक्षा अपना प्राण देकर न करें तो हमारे नारी-धर्म को धिक्कार है। तुम्हारे अनजान में नाना कौशल से यह काम इतने दिन तक करती आ रही हूँ। जिसका कोई भी हुक्म नहीं टाल सकी। सबसे बड़ा कठिन आज का यह हुक्म, यह भी मुझे मानना पड़ेगा, यह मेरे

देवता को आज तुम्हारे हाथ में छोड़ कर मैं अलग हो जाऊँगी। जानती हूँ मेरे से बड़ा रक्षक उनके सर पर है। दो दिन बाद ही समाज के साथ मेरा संबंध कितनी निन्दा से भर उठेगा—यह मैं जानती हूँ। यह लांछना मैं अपने सर-माथे पर लूँगी। कभी यह मत सोचना कि चालाकी कर के अपनी स्त्री को बचा कर तुम इस मनुष्य पर अलग नालिश दायर कर सकोगे। मैं चिर दिन उसके पीछे-पीछे रह कर सज़ा की आख़िरी मियाद तक उसका साथ दूँगी। तुम सुख से रहना, तुम्हें कोई भय नहीं। इच्छा करते ही तुम्हें नूतन संगिनी मिल सकेगी और चाहे जो करो, मेरे ऊपर दया मत करना। मेरे से जो कहीं महान हैं उन पर तो तुमने दया नहीं की। उसी निष्ठुरता का अंश लेकर मस्तक ऊँचा करते ही आज मैं तुम से विदा लूँगी। प्राणपन से प्यार करती हुई मैंने तुम्हारी सेवा की है, प्राणपन से, तुम्हें वंचना किया है कर्तव्य-बोध से, तुम्हें बताये जाती हूँ। इसके बाद शायद वक़्त न मिले।"

सदू की बात को बाधा देकर अनिल बोल उठा, "विजय बाबू, आज मैं अपने को पकड़ा देने के विचार से ही यहाँ आया था, मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं, मेरा काम पूरा हो गया। आप सदू की बातों से भड़किये मत। वह एक असाधारण स्त्री है। इसने हम लोगों के देश में, इस अभागे समाज में जन्म लिया है। ख़ूब अच्छी तरह से ही पहचाना है मैंने उसे और पहचानता हूँ, इसीलिए कहता हूँ कि वह निश्कलंक है। जिस कठोर कर्तव्य को मस्तक पर धारण कर हमलोग चले हैं वहाँ प्रेम के लिए कोई गुञ्जाइश नहीं है, वहाँ है सिर्फ़ अपने को जलांजलि देना। विश्व संसार के लोग सदू के संबंध में कुछ न जानेंगे; आप लोगों को कोई भय नहीं है। उसे लेकर के आप मन्दिर की सुरंग के रास्ते घर लौटिए। मैं अभी अपने को पुलीस के हाथ में देता हूँ, इधर से। इसके साथ मैं आप लोगों को एक बात जता रखता हूँ, हमको आप लोग बाँध नहीं रख सकेंगे। रवि बाबू का एक गाना मुझे कंठस्थ है—

'आमारे बांधबि तोरा सेई बांधन की तोदेर आछे ?'

यकायक गा उठा विदेशी गला से। मंदिर की दीवार थर-थर काँप उठी गले की ध्वनि से। आवाक हो गए इन्स्पेक्टर बाबू।

"अनेक बार इस गाने को गाया है, फिर गाऊँगा; इसके बाद अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते चलूँगा, जैसे हो रास्ता बना लूँगा, यह वचन मैं आप लोगों को दिए जा रहा हूँ; और पन्द्रह दिन बाद अख़बारों में मोटे अक्षरों में निकलेगा—'अनिल विप्लवी अन्तर्ध्यान'। आज के लिए प्रणाम।"

यकायक विजय का हाथ काँप उठा। टार्च हाथ से छूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा। दोनों हाथ से मुँह ढँक लिया। वह मिट्टी का दिया तो हवा के एक झोंके से पहले ही बुझ चुका था।

पत्नी का प्रेम

सदा की भाँति आज भी जब स्वामी-स्त्री में मतभेद उठ खड़ा हुआ और कमला ने स्पष्ट शब्दों में विनोद-बिहारी की बात मानना अस्वीकार कर दिया तो स्वयं उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। क्रोध से काँपते हुये स्वर में वे बोले—"अच्छा, तो अब जो कुछ मुझे सूझेगा, वही मैं भी करूँगा।"

सीढ़ियों से नीचे उतरते-उतरते रूखे स्वर में कमला ने कहा—"अच्छा !"

विनोदबिहारी भी नीचे उतर आए। कमला अब तक सीढ़ियों के पास बने स्नानगृह में पहुँचकर स्नान करने लगी थी। क्षणभर स्तम्भित भाव से खड़े-खड़े कुछ सोचने के बाद उन्होंने एक बार कमला की ओर देखा, फिर वे द्वार की ओर चल पड़े।

चलते समय विनोदबिहारी ने अपने मन में कहा—"आरम्भ

से ही स्त्री को सिर पर चढ़ाकर रखने का यह फल है। इसने मुझे एकदम से पालतू कुत्ता ही समझ रखा है। यह जितना भी अपमान करेगी, वह सब चुपचाप सहता हुआ मैं इसके पैरों के पास पड़ा रहूँगा।"

क्रोध से मुँह लाल किये हुये विनोदबिहारी घर से निकल पड़े। उस समय ऊपर के कमरे में टँगी हुई घड़ी में टन-टन करके पाँच बजे।

घर से निकलकर ज़रा देर तक गली में चलने के बाद विनोद-बिहारी सड़क पर आ गए। कलकत्ता जैसे कारबारी नगर की सड़क की चहल-पहल का क्या कहना था। ट्राम, मोटरलारियाँ और गाड़ियाँ आदि एक से एक तेज़ी से दौड़ रही थीं। चारों ओर जीवन का प्रवाह था।

सड़क पर खड़े-खड़े यह भीड़ देखते हुए विनोदबिहारी ने मन ही मन कहा—"जिस स्त्री की एक ज़रा-सी आकांक्षा की पूर्ति के लिए मैं दिन-रात एक कर देता हूँ, वह यदि मेरी एक साधारण बात तक मानने को तैयार नहीं है, तो मैं किसका मुँह देखकर इस जीवन का भार लादे फिरूँ? बच्चों का? परन्तु बच्चे ही मेरे होकर क्यों रहने लगे? कुछ भी हो, ये सब हैं तो उसी वृक्ष के फल-फूल? जब वृक्ष ही अपना नहीं रहा तब फल-फूल की आशा करना दुराशामात्र है!"

हृदय के ऊपर दुःख का असह्य भार लादे हुए विनोदबिहारी अपने दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में विचार करने लगे। आज से सोलह वर्ष पहले उनका कमला के साथ विवाह हुआ था। इस बीच में कमला को कई पुत्र और पुत्रियों की माता होने का भी सौभाग्य हो गया। परन्तु विनोदबिहारी की दृष्टि उसकी ओर आज भी वैसी ही बनी है, जैसी उस समय थी जब कि यौवन के प्रभातकाल में वह अद्भुत मधुरिमामय माया की दूकान मस्तक पर लादे उनके समीप आई थी। विनोदबिहारी कमला से केवल इतनी ही आशा करते थे कि वह साँझ होने से पहले-पहल ज़रा ठिकाने से सँभालकर सिर के

बाल बाँध ले, मस्तक में सिन्दूर लगा ले और एक अच्छी-सी साड़ी पहन ले।

और कमला ? उसने जैसे प्रण कर लिया था कि स्वामी की यह कामना वह कदापि न पूर्ण होने देगी। वह कहती है, इतने बड़े-बड़े लड़के और लड़कियों के सामने दुलहिन बनकर निकलना क्या उसके लिए शोभाजनक होगा ? अब उसकी बनाव-शृङ्गार की अवस्था नहीं रही। वहू नहीं, बल्कि गृहिणी बन गई है वह अब।

विनोदबिहारी और कमला के प्रायः प्रतिदिन के विवाद का यही एक-मात्र कारण था। उस दिन विनोदबिहारी बाज़ार से एक बढ़िया साड़ी ले आए थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि इसे पहनकर कमला कम से कम एक बार उनके सामने आए। परन्तु उसने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया।

सड़क पर खड़े-खड़े विनोदबिहारी यही सब बातें सोच रहे थे क्षोभ की अधिकता के कारण उनके हृदय में आग-सी जल रही थी वे सोच रहे थे कि कमला से अब किसी प्रकार के सुख की आशा करना मृगमरीचिका के फेर में पड़कर अकारण प्राण देने के समान है। उसके हृदय में स्नेह-ममता का जो झरना था, वह अब सूख गया है, इसलिए इस जीवन में अब सुख की आशा करना निरर्थक है ऐसे रसहीन जीवन की गाड़ी घसीटने से क्या लाभ ? इससे तो यह कहीं अच्छा होगा कि गंगा जी के गर्भ में प्रवेश करके वे इन सब झगड़े-झंझटों से छुट्टी पा जायें और····

मन में इस प्रकार का निश्चय कर के विनोदबिहारी एक ट्राम पर बैठ गए। इससे पूर्व के उपर्युक्त प्रकार से अपने जीवन का उत्सर्ग कर देने की कई बार कमला के सामने धमकियाँ दे चुके थे। परन्तु कमला सदा ही विनोदबिहारी की इन धमकियों की उपेक्षा कर दिया करती थी। शुरू-शुरू में जब कभी वे कोई ऐसी बात मुँह से निकालते थे, तब कमला की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाया करती थी। विनोदबिहारी से वह अनुनय-विनय किया करती और उनके पैरों में

पड़ जाया करती थी ! किन्तु बाद में पति की इन धमकियों के साथ-साथ वह पति की भी उपेक्षा करने लगी।

बाग़ बाज़ार में पहुँच जाने पर विनोदबिहारी ट्राम पर से उतर गए। वे सीधे गंगा जी के तट की ओर चले। जैसे-जैसे वे आगे की ओर बढ़ते जा रहे थे, वैसे ही वैसे अपने मन में कहते जाते थे—"लो कमला, अब अपने कर्म का फल भोगो। तुमने समझ रखा होगा कि यह भीरु आदमी इस तरह प्राण क्या दे सकेगा! प्राणों का इसे बड़ा मोह है! परन्तु आज मैं तुम्हारी यह धारणा मिथ्या प्रमाणित करके ही रहूँगा।"

गंगा जी के तट पर जाकर विनोदबिहारी खड़े हो गए।

गंगा जी के वक्ष पर कितनी ही नौकायें उस समय तैर रही थीं। कई स्टीमर भी दौड़ रहे थे। तट के पास ही एक नौका लगी हुई थी। उस पर से फूस उतारा जा रहा था। जल के ऊपर जो तरंगें नाच रही थीं, उनका कलकल निनाद सुनकर ऐसा जान पड़ रहा था, मानों गंगा जी आनन्दपूर्वक हँस रही हैं।

विनोदबिहारी एकांत की प्रतीक्षा में तट पर एक स्थान पर बैठ गए। वहीं बैठे-बैठे उनके मन में कितनी बातें आईं। पुराणों तथा इतिहास में आए हुए कितने व्यक्तियों के सुख-दुःख की बातों पर विचार करते-करते उनका ध्यान एकाएक स्वयं अपने तथा कमला के जीवन से सम्पर्क रखनेवाली घटनाओं की ओर गया।

कमला ने जिस दिन नवबधू के रूप में पहले-पहल विनोदबिहारी के घर में पदार्पण किया था, उस दिन से लेकर आज तक की प्रायः समस्त घटनायें एक-एक करके उनके मानस पट पर उदित होने लगीं। कमला एक भी ऐसा कार्य नहीं करती थी, जिसके लिए वह उनसे अनुमति न प्राप्त कर लेती हो। बीच-बीच में उसने विवाद किया है, रुष्ट होकर मुँह भी फुला लिया है, परन्तु यह सब कितनी देर के लिए? क्षण भर के बाद ही तो वह फिर मुस्कराती हुई आकर बगल में बैठ जाती थी। अपने अलौकिक सेवा-भाव, अपनी अपरिसीम प्रीति तथा

आन्तरिक स्नेह-ममता से विवाद की उस यातना को निमेष-मात्र में हृदय से पोंछ डाला है। उसने जो स्नेह-ममता प्रदान की है, उसकी तुलना में यह कलह-विरोध कितना तुच्छ है।

कमला के सम्बन्ध में विचार करते-करते विनोदबिहारी के हृदय में जमा हुआ मेघ कटकर जहाँ का तहाँ हो गया। अन्त में एक बार विनोद ने देखा कि उसमें लोभ नहीं है, दुःख नहीं है, अभिमान नहीं है। कमला के प्रेम से हृदय ओत-प्रोत हो उठा है। उसका मुख, उसकी मुस्कान और भ्रूभंङ्गी सभी सुन्दर हैं, सभी आकर्षक हैं।

एकाएक विनोदबिहारी के हृदय में एक काँटा-सा खटक गया। उनके मन में आया—मेरी केवल इतनी अकांक्षा है कि कमला पास ज़रा सुन्दर और आकर्षक वेश में आया करे। मेरी इस तुच्छ आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए क्या वह कुछ भी नहीं कर सकती?

क्षण भर के बाद ही विनोदबिहारी के मन में फिर आया—कमला की अपनी व्यक्तिगत इच्छा भी तो है। उसके मन पर दबाव डाल कर कोई कार्य करने के लिए उसे बाध्य करना क्या उचित है? मैं सदा से ही तो उससे कहता आ रहा हूँ कि तुम मेरी दासी नहीं हो, कमला! तुम मेरी सखी हो, मेरी सहचरी हो, मेरी सहधर्मिणी हो।

गंगा जी के वक्ष पर जिस प्रकार अविराम भाव से तरङ्गों पर तरंग उठ रही थीं, ठीक उसी प्रकार विनोद के हृदय में भी भावों की तरंगें आन्दोलित हो रही थीं। इस तरंग माला के स्पर्श के कारण विनोदबिहारी के हृदय की ज्वाला और उनके दिमाग़ की झुँझलाहट जहां की तहां हो गई। हृदय-रूपी कमल के पत्तों पर आसन जमाकर मुस्कराती हुई कमला विराजमान हो गई। कहने का आशय यह कि विनोदबिहारी का हृदय वसन्तऋतु की अनुपम शोभा से पूर्ण होकर फिर सौंदर्यशाली हो उठा।

एकाएक किसी स्टीमर की घर-घर ने विनोदबिहारी का ध्यान भंग कर दिया। दृष्टि उठाकर उन्होंने अपने सामने ही जो भयंकर दृश्य देखा, उसके कारण उनका अन्तस्तल तक काँप उठा। एक बंगाली

युवक धड़ाम से गंगा जी में कूदा और निमेष-मात्र में ही जल के नीचे चला गया।

× × ×

यह बंगाली युवक कलकत्ता के समीप ही किसी गाँव का निवासी था। उसका नाम था रवीन्द्र चटर्जी। कलकत्ता में वह नौकरी के लिए आया था और यहाँ आकर द्वार-द्वार की ठोकर खाते-खाते, आदमी-आदमी की ख़ुशामद करते-करते परेशान हो गया। परन्तु उसे कहीं कोई नौकरी न मिल सकी। घर में चार-पाँच आदमी खाने-वाले थे। रवीन्द्र को छोड़कर उनका और कोई सहारा नहीं था। इससे उन सब की चिट्ठी पर चिट्ठी आती और हर एक चिट्ठी में खर्च भेजने की ही बात लिखी होती। अन्त में घरवालों के दुःख-क्लेश की बातें सुनते-सुनते तथा नौकरी के लिए जगह-जगह भटकने से तंग आकर रवीन्द्र चटर्जी ने गङ्गा जी में अपने प्राणों का उत्सर्ग करके सारे झंझटों से छुटकारा प्राप्त कर लेने का निश्चय किया। घर के लिए उसने एक चिट्ठी लिख दी थी—मेरी आशा न करना। अब मैं चल रहा हूँ।

रवीन्द्र चटर्जी गंगा-तट पर आकर काफ़ी देर तक टहलता रहा। वह सोच रहा था कि लोगों की दृष्टि के सामने गंगा जी में कूद कर प्राण देना सम्भव नहीं होगा। जैसे ही मैं जल में कूदूँगा, सब की दृष्टि मेरी ओर जायगी और लोग चोटी पकड़कर मुझे बाहर खींच ले आवेंगे। मन में यह बात आने पर रवीन्द्र चटर्जी को कुछ हँसी-सी आई। वह सोचने लगा—मैं किस तरह जीवन की रक्षा करूँ, इस बात पर ध्यान देने की किसी को आवश्यकता नहीं है। जब मैं मरने लगूँगा, तब लोग मरने भी न देंगे, गला पकड़कर गंगा जी से खींच ले आवेंगे! उस अवस्था में आश्चर्य नहीं कि मुझे पुलिसवालों के भी क्रोध का भाजन होना पड़े। आत्महत्या के अपराध में चालान हो जाने पर कुछ दिनों तक के लिए स्थान और भोजन की व्यवस्था अवश्य हो जायगी, परन्तु प्रश्न है घरवालों के भोजन की व्यवस्था

का ! यही सब बातें सोचते-सोचते एक बार एकान्त देखकर रवीन्द्र चटर्जी धड़ाम से गंगा जी में कूद पड़ा।

× ×

एक ऐसा भी समय था जब कि विनोदबिहारी ने इसी कलकत्ता नगर में तैराकी में अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। सावन-भादों की बढ़ी हुई गंगा में भी वे आसानी से काफ़ी दूर तक तैर सकते थे। इसलिए सामने ही एक आदमी को डूबते देखकर वे शान्त न रह सके। जहाँ पर रवीन्द्र चटर्जी कूदा था, वहीं वे भी कूद पड़े। अवश्य उस समय उनका उद्देश्य रवीन्द्र चटर्जी की तरह अपने प्राणों का उत्सर्ग करना नहीं, बल्कि रवीन्द्र की रक्षा करना था। परन्तु विनोदबिहारी का इधर बाईस वर्ष से तैरने का अभ्यास छूट गया था। साथ ही कूदते समय उनके मन में कुछ उत्तेजना और घबराहट का भी भाव था। उतावली में जूता-कपड़ा उतारना भी वे भूल गए थे, इसलिए सरलता-पूर्वक हाथ-पैर चलाने की सुविधा भी उन्हें नहीं रह गई थी। अवस्था के प्रभाव के कारण इधर कुछ वर्षों से उनके शरीर में मांस और मेदा की वृद्धि हो गई थी और उनका शरीर पहले की अपेक्षा अब स्थूल हो गया था। इन सब कारणों से विनोदबिहारी जल में कूदते ही गोते खाने लगे और डेढ़-दो सेर जल उनके पेट में चला गया।

जल में कूदते ही विनोदबिहारी के हृदय में जिस भय और आतङ्क का संचार हुआ था, वह क्रमशः बढ़ने लगा। तट पर आने के लिए वे अपनी समस्त शक्ति से हाथ-पैर चलाने लगे, परन्तु तट की ओर बढ़ने की अपेक्षा वे उसकी विपरीत दिशा में ही बहते गए। इस प्रकार वे अगाध जल में पहुँच गए और अपने मस्तक को जितना ही जल के ऊपर रखने का उद्योग करते, उतना ही वह जल में डूबता जाता। इस प्रकार विनोदबिहारी क्रमशः जीवन से निराश होने लगे।

बड़ी देर के बाद विनोदबिहारी के शरीर से एकाएक कोई चीज़ छू गई। वे सोचने लगे—यह क्या चीज़ है? तरबूज़ है, फ़ुटबाल है या कोई जलचर जीव है? उन्हें आशङ्का हुई कि कहीं यह मुझे खा

जाने के लिए तो नहीं लगा चला आ रहा है ? परन्तु गङ्गा जी की प्रबल धारा में पड़कर जीवन से वे प्रायः निराश हो चुके थे, इससे उन्होंने उस चीज़ को ज़ोर से पकड़ लिया। उनके मन में आया कि चलो, इतनी देर के बाद ज़रा-सा सहारा तो मिला !

विनोदबिहारी के शरीर से जो वस्तु छू गई थी, उसे उनका पकड़ना था कि मानो किसी ने उनके शरीर को किसी शृङ्खला से जकड़ दिया। अब हिलाने से उनके हाथ-पैर हिलते ही नहीं थे। उनका सारा शरीर निस्पन्द हो उठा था। इससे उन्हें और निराशा हुई। उनके मन में आया कि अवश्य किसी जलचर जीव ने उन्हें पकड़ लिया है। अब वह शायद ही उन्हें जीता छोड़े !

इसके बाद—अगाध काले अन्धकार में मिलकर सब कुछ एकाकार हो गया था।

× × ×

कुछ और समय व्यतीत हुआ। यह ज़रा देर का समय विनोदबिहारी के लिए मानो हज़ार वर्षों के समान हो गया था। उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा मानो उन्हें कोई दोनों हाथों से ख़ूब ज़ोर से पकड़े हुए है और लादकर किसी अज्ञात देश की ओर लिए जा रहा है। एकाएक ऐसा प्रतीत हुआ कि यह यमदूत है। पकड़कर यमलोक में लिए जा रहा है। अंग-अंग में अविराम गति से प्रहार हो रहा है ! हाथ-पैर पकड़ कर कितने ज़ोर से घसीटकर लिए जा रहा है !

आँखें खोलकर विनोदबिहारी ने देखा तो उन्हें प्रकाश का ज़रा-सा आभास मिला। परन्तु इसके बाद ही मानो फिर किसी ने उनकी दोनों आँखें मूँद लीं। पहले का-सा ही अंधकार फिर हो गया। साथ ही क्लेश की भी सीमा न रही। मानो कोई लात और घूँसों से पीट रहा हो ! हाथ-पैर पकड़-पकड़कर उन्हें घसीट रहा हो।

मामला क्या है, यह विनोदबिहारी की समझ में नहीं आ रहा था। मन ही मन उन्होंने कहा—"तो क्या मन में आत्महत्या करने का विचार लेकर जो घर से चला था, उसके कारण रौरव नरक में

आगया हूँ !" विनोदबिहारी ने आँखें मूँद लीं। उन्होंने सोचा; इससे परित्राण पाने का कोई उपाय नहीं है। अवश्य यह परलोक ही है। यहाँ का एक भी व्यक्ति परिचित नहीं है। इसके सिवा यहाँ के लोग जितनी सहानुभूति के साथ मुँह की ओर ताक रहे हैं, उतनी सहानुभूति का भाव मृत्युलोक में तो मैंने किसी में देखा नहीं। अवश्य यह परलोक ही है !

× × ×

डूबते समय सहारा लेने के लिए विनोदबिहारी ने जिस वस्तु को दोनों हाथों से पकड़ रखा था, वह और कुछ नहीं, रवीन्द्र चटर्जी का शरीर था। प्राणोत्सर्ग करने के निमित्त गंगा जी में कूदने के बाद रवीन्द्र चटर्जी को प्राणों से बहुत अधिक मोह हुआ। उसने लौटकर तट पर जाने का निश्चय किया। तैरने में रवीन्द्र बड़ा तेज़ था। वह झटपट सँभलकर तैरने लगा। इतने में विनोदबिहारी को जल में गोते खाते-खाते आत्मरक्षा के लिए निरर्थक प्रयत्न करते देखकर उन्हें बचाने के लिए वह सचेष्ट हुआ।

रवीन्द्र चटर्जी ने विनोदबिहारी की कमर में हाथ लगाकर जैसे ही उन्हें सहारा देने का उद्योग किया, वैसे ही विनोदबिहारी दोनों हाथ से उसे पकड़कर उसके ऊपर लद गए। इसका परिणाम यह हुआ कि रवीन्द्र चटर्जी भी गोते खाने लगा। अब उसे बड़ा पछतावा हुआ। उसके मन में आया कि मैं इस आदमी को बचाने के लिए क्या दौड़ा, इसके साथ ही साथ स्वयं मुझे भी डूब मरना पड़ेगा !

संयोग की बात थी कि तैराकों के एक क्लब के कुछ सदस्य एक डोंगी पर बैठे-बैठे गाते हुए उधर से आ निकले। उन्हें देखते ही विनोदबिहारी डूबने से बचने के लिए गंगा जी की तरङ्गमाला से युद्ध करते-करते कुछ ढीले पड़ गए। रवीन्द्र चटर्जी के मन में आशा का संचार हो गया। उसने उन्हें पुकारा। गाना तुरन्त बन्द हो गया। तीन-चार तैराक जल में कूद पड़े। नौका भी आ गई। लोगों ने पकड़ कर विनोदबिहारी को नौका पर लादा।

विनोदबिहारी उस समय प्रायः अचेत थे। जल वे इतना अधिक पी गए थे कि उनका पेट फूलकर नगाड़ा हो गया था। तट पर लाकर तैराकों के क्लब के कर्त्तव्य-परायण सदस्य उनकी तात्कालिक चिकित्सा करने लगे। दल के दल दर्शक आकर जम गए। चारों ओर भीड़ लग गई। देखते-देखते एक सिपाही भी आगया, जो भीड़ को तितर-बितर करने लगा। किसी सज्जन ने एम्बुलेंस के लिए टेलीफ़ोन कर दिया।

एम्बुलेंस आते-आते विनोदबिहारी परलोक से लौट कर इस लोक में आ चुके थे। चकित मन से चुपचाप बैठे-बैठे वे चारों ओर ताक रहे थे। सड़क पर गैस जल रहे थे। चारों ओर विशाल जन समुदाय एकत्र था। उनकी समझ में उस समय ठीक-ठीक यह नहीं आ रहा था कि मैं सचमुच जीवित हूँ या मरकर चित्रगुप्त की कचहरी में हाजिर हुआ हूँ, अपने पापकर्म के सम्बन्ध में जवाबदेही करने के लिए।

रवीन्द्र चटर्जी ने कहा—"अब तो इन्हें आसानी से घर पहुँचाया जा सकता है। एम्बुलेंस की क्या जरूरत है?" परन्तु सिपाही ने रवीन्द्र को डाँट दिया। उसने कहा—"इसे थाने पर ले चलना होगा।"

एम्बुलेंस में बैठ कर विनोदबिहारी को थाने पहुँचाया गया। वहाँ भी उन्हें घेरकर ख़ासी भीड़ जम गई। चारों ओर से व्यंग की बौछार होने लगी। कोई कहता—"शायद इस बुढ़ापे में प्रेम करने की बात सूझी थी, अन्त में निराशा का आघात असह्य हो जाने पर इस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए बाध्य हुए हैं!" कोई कहता—"अजी नहीं, गङ्गा जी का जल नापने गए थे, एकाएक पैर फिसल गया, इससे ये गिर पड़े!" इधर दारोग़ा जी कह रहे थे—"नहीं साहब, जरूर इन्होंने किसी आफ़िस में गबन किया है!"

थाने के भीतर जहाँ विनोदबिहारी पर तरह-तरह की अपमान-जनक बातों की बौछार हो रही थी, वहीं थाने के द्वार पर रवीन्द्र चटर्जी की प्रशंसा की बाढ़-सी आ गई थी। जरा ही देर में उसके

लिए अच्छी-सी धोती आ गई, बनियाइन आ गई, कमीज़ आ गई। परन्तु इस स्वागत से वह प्रसन्न नहीं था। वह सोच रहा था कि उसके स्वागत की इस तरह जो धूम मची हुई है, वह कितनी देर के लिए है ? ज़रा देर के बाद ही तो फिर उसके सिर पर वे ही समस्यायें सवार हो जायँगी !

× × ×

यथासमय थाने में 'केस' लिखा गया। एम्बुलेंस पर बैठालकर विनोदबिहारी अस्पताल पहुँचाए गए। उनकी अवस्था देखकर डाक्टर ने तुरन्त ही उन्हें वापस कर दिया। उसने कहा—"चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है।" विनोदबिहारी के आग्रह से उसने इनके एक मित्र को फ़ोन कर दिया, जिसने थाने पर पहुँचकर इनकी ज़मानत की। अन्त में थाने से लौटकर तीन बजे रात को विनोदबिहारी जब घर पहुँचे तब कमला उत्कंठित भाव से खिड़की के पास बैठी उनकी राह देख रही थी।

× × ×

मामला पेश होने पर अदालत ने चेतावनी देकर विनोदबिहारी को छोड़ दिया। कमला ने भी उस दिन से अपना हठ सदा के लिए परित्याग कर दिया। विनोदबिहारी की सफ़ाई पर वह विश्वास नहीं कर सकी। उसके मन में तो यही बात जमी हुई थी कि अभिमान में आकर ये सचमुच गङ्गा जी में कूद पड़े थे। मेरी चूड़ियों और सिंदूर के भाग्य से ही वे लौट आए हैं !

× × ×

घटना के दूसरे ही दिन के एक स्थानीय दैनिक में कमला ने सारा विवरण पढ़ लिया था। उसी पत्र में यह भी लिखा था कि तैराकी क्लब ने रवीन्द्र चटर्जी को पुरस्कृत करने के लिए उसे पदक प्रदान किया। साथ ही उसके इस साहसपूर्ण कार्य का हाल सुनकर कारपोरेशन के अध्यक्ष महोदय इतने प्रसन्न हुए हैं कि उन्होंने उसे

तैराकी की शिक्षा देने के लिए साठ रुपए मासिक पर नौकर भी रख लिया है।

समाचारपत्र में यह विवरण पढ़कर कमला काँप उठी थी। उसने भगवान् को अनेक धन्यवाद दिए। परन्तु यह संवाद पढ़कर हँसते हँसते विनोदबिहारी ने कहा—"वास्तव में रवीन्द्र को बचाने के लिए मैं गया था। उसे मिली प्रशंसा, पदक, नौकरी···और मुझे ?"

कमला पास ही खड़ी कनखियों से अपने पति की ओर देख रही थी। विनोद ने एक बार उसकी ओर देखा और फिर अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए बोला—"मुझे मिला पत्नी का प्रेम—जिसे खोकर मैं अपने जीवन को ही खोने चला था!"

सदानन्द का वैराग्य

माता-पिता ने बड़े प्यार के मारे उसका नाम रखा था सदानन्द। परन्तु पास-पड़ोस में दूसरों की खिल्लियाँ उड़ा-उड़ा कर ही विनोद का अनुभव करने वाले जो लोग थे, उन्होंने स्नेह की अधिकता के कारण की गई इस भूल को सुधार लिया था। फलतः उन सब के बीच में वह प्रसिद्ध हुआ निरानन्द के नाम से।

सदानन्द में छुटपन से ही आवश्यकता से कहीं अधिक गम्भीरता आ गई थी। जब वह छोटा-सा बालक था तब अपनी अवस्था के अन्य बालकों के साथ वह उछलता-कूदता और नाचता नहीं था। पाठशाला में जाकर वह किसी प्रकार की चंचलता भी नहीं प्रकट किया करता था। उसके सहपाठी लोग उपहास के लिए उसे 'गुरु जी' कहा करते थे।

सहपाठियों तथा पड़ोसियों के तरह-तरह के व्यंग्यवाण सहन करते-करते सदानन्द ने अपने जीवन का बहुत-सा समय व्यतीत कर

दिया। यौवन के पथ पर भी अब वह बहुत दूर तक अग्रसर हो आया है। ऐसी अवस्था में तो उसका न हँसना बहुत कुछ स्वाभाविक ही था।

सदानन्द कभी हँसता नहीं था अवश्य, किन्तु उसने यथारीति विवाह किया था। षष्ठी माता की कृपा से कई-कई लड़कों और लड़कियों के आनन्द-कल्लोल से उसका घर भी मुखरित हो उठा था। परन्तु इन समस्त घटनाओं का सदानन्द के जीवन से ठीक मेल नहीं खाता था।

पहले तो विवाह का होना ही सदानन्द के गाम्भीर्य के प्रति एक बड़ा ही निष्ठुर उपहास था, माता-पिता का बहुत बड़ा षड़यन्त्र था। दूल्हे के वेश में सदानन्द ससुराल में जाकर मण्डप में बैठा, तब सालियों और सरहजों ने विनोद की झड़ी लगाकर उसकी गम्भीरता को ढुलमुल करने के लिए कितना प्रयत्न किया। कोहबर में तो उन सब की विनोदप्रियता इतना उग्र रूप धारण कर गई कि सदानन्द के गाम्भीर्य के लिए अपनी मर्यादा पर स्थिर रहना एक प्रकार से असम्भव ही हो उठा।

विवाह के बाद घर में स्त्री आई। वह सदानन्द के लिए एक विकराल आपदा हो उठी। भगवान की कृपा से जो कुछ मोटा-महीन मिल जाता वही खा-पहन कर जब वह सन्तुष्ट रहती तब तो कोई बात ही नहीं थी। भोजन-वस्त्र की चिन्ता सदानन्द को नहीं थी। वह परेशान था तो केवल स्त्री की तरह-तरह की फ़रमाइशों के कारण। वह कामना किया करती थी तरह तरह की विलासिता की सामग्रियाँ प्राप्त करने के लिए, हँसी-ठट्ठा और विनोद करने के लिए।

सदानन्द का शान्तिप्रिय हृदय अकस्मात् आई हुई इस आपदा के कारण त्राहि-त्राहि करने लगा। स्त्री के अत्याचारों से पीड़ित होकर वह बेचारा सोचा करता कि स्त्री की अपेक्षा तो मनुष्य को सीधे निगल जाने वाला मगर भी कहीं अच्छा है। बात यह है कि मगर मनुष्य को पकड़ कर कभी-कभी छोड़ भी दिया करता है,

परन्तु स्त्री जब एक बार पकड़ लेती है, तब वह उसे फिर कभी नहीं छोड़ती।

विवाह के दो-चार वर्ष के बाद ही स्त्री ने एक नवीन प्रकार के उपद्रव के मार्ग का आविष्कार किया। प्रति वर्ष एक-एक शिशु भूमिष्ठ करके घर भर देने का उपक्रम उसने किया। शिशुगण हँसते-खेलते, नाचते-गाते, पचीसों प्रकार से मुँह बनाया करते। सदानन्द का लम्बी-लम्बी दाढ़ियों से भरा हुआ अत्यन्त ही गम्भीर मुख देख कर वे ज़रा भी नहीं डरा करते थे। कभी-कभी तो उसकी दाढ़ी पर आक्रमण करने पर भी वे उतारू हो जाया करते थे। यह सब देख-सुनकर अपनी गम्भीरता की रक्षा करना सदानन्द के लिए किसी-किसी समय दुःसाध्य हो उठा करता था।

गाँव के लोग भी क्या कम उपद्रवी थे। सदानन्द के इस तरह के गाम्भीर्य का आदर करना तो दूर रहा, उसे वे लोग तरह-तरह के क्लेश दिया करते थे। कभी कोई उसकी खोपड़ी पर तड़ी जमा देता, कभी कोई उसके ऊपर हुक्के का पानी छिड़क देता, कभी कोई उसकी दाढ़ी ही पकड़ कर खींचने लगता।

छुटपन से ही सम्पर्क में आने वाले विभिन्न प्रकार के लोगों का अशिष्टतापूर्ण उत्पात सहन करते-करते सदानन्द का चित्त उद्विग्न होता जा रहा था। अन्त में क्रमशः पाँच-छः बच्चों के रोने धोने, हँसने-खेलने, लड़ने-झगड़ने और बात-बात के लिए मचलने के कारण जब उसका घर अशान्तिमय हो उठा तब एक दिन सदानन्द "धत्तेरे की!" कह कर घर से चल दिया।

सदानन्द ने घर तो छोड़ दिया, किन्तु अदृष्ट ने उसे नहीं छोड़ा। सदानन्द चाहता था कि मैं रात दिन किसी निर्जन स्थान में पड़ा रहा करूँ, जीवन में किसी भी मनुष्य के सम्पर्क में आने की आवश्यकता मुझे नहीं, कभी मैं किसी के लेने-देने में न रहूँ। परन्तु उसके भाग्य-विधाता ने व्यवस्था की थी कुछ और ही प्रकार की।

पर्वत की गुहा और गहन-वन दूर से मन में एक बहुत ही

उत्तम प्रकार के भाव का संचार किया करते हैं। परन्तु वास्तवि जीवन में उनमें से कवित्व का अंश खोज निकालना बड़ा दुष्कर है गुहा में कंकड़ चबा कर तथा वन में फल-मूल तथा पौधों की पत्ति खाकर अधिक दिनों तक जीवन-धारण कर रखना तो सम्भव न है ! क्षुधा नाम की जो वस्तु है, वह सदानन्द के इस तरह के अपरि सीम गाम्भीर्य से ज़रा भी नहीं डरा करती थी।

सदानन्द ने एक गाँव से बहुत दूर हटकर मैदान में ए झोपड़ा लगाया। किन्तु वहाँ भी क्या वह झमेले से छुटकारा प सका ? बाज़ार जाने वाले व्यापारी उसके कुटीर में प्रायः पहुँ जाया करते थे तम्बाकू पीने के लिए आग माँगने के मतलब से कृषकगण गीत गा-गाकर सदानन्द की शान्ति भंग किया करते थे जो खिलाड़ी और घुमक्कड़ लड़के थे, उन्हें और कहीं दूसरी जग नहीं मिलती थी मरने के लिए। वे उसके कुटीर के ही चारों ओ चक्कर लगाया करते थे।

आहार संग्रह के लिए सदानन्द को बीच-बीच में गाँव में भ प्रवेश करने की आवश्यकता पड़ा करती थी। वहाँ भी दुनिया भर के झंझट थे। गाँव के कुत्ते भौं-भौं करके उसकी खोपड़ी खा डालते थे। इसके अतिरिक्त लड़के भी तालियां बजा बजा कर उसे पाग कर दिया करते थे। स्त्रियाँ तक घूँघट की आड़ से साधू बाबा की परेशानी देख कर कटाक्ष मारती हुई मुस्करा दिया करतीं। इतनी बड़ी गम्भीरता की ओर ज़रा भी ध्यान न देकर वे उसे एकदम से ही हवा कर दिया करती थीं।

अब वह गाँव सदानन्द के रहने लायक़ न रह गया। उसने खोज कर एक दूसरे गाँव से काफ़ी दूरी पर एक मैदान में, श्मशान भूमि में अड्डा जमाया।

श्मशान भूमि में जाकर सदानन्द को क्लेश देने का उपक्रम कोई भी नहीं किया करता था। शव के साथ में आये हुए ही लोग यदा-कदा उसके कुटीर में आश्रय ग्रहण किया करते थे और उन्हें

सदानन्द के कारण जो सुविधा प्राप्त होती है उसके बदले में वे उसे कुछ दे दिया करते थे। इस प्रकार जो कुछ मिल जाता उसी से सदानन्द अपनी उदरपूर्ति कर लिया करता था।

इस श्मशान में अड्डा जमा लेने के बाद से सदा एक प्रकार से सुखी ही था, कम से कम उसे परेशान करने के लिए यहाँ कोई न आया करता था। परन्तु उस बेचारे के भाग्य विधाता को इस विषय में निश्चेष्ट रहना स्वीकार नहीं था।

एक दिन की बात है। कुछ लोग एक शव लेकर उसकी अन्त्येष्टि करने के लिए आये। इतने में एकाएक बड़े ज़ोरों की वर्षा होने लगी। इससे उतावली के साथ शव ले आकर तो उन सब ने सदानन्द के कुटीर के द्वार पर रख दिया और स्वयं कुटीर में आश्रय ग्रहण किया। इस विषय में उन सब ने इतनी शीघ्रता की कि कोई उनकी अभ्यर्थना के लिए यहाँ तैयार है या नहीं, इस ओर ध्यान तक नहीं गया उनका।

छोटा-सा कुटीर था। पाँच-सात आदमी जाकर उसमें जम गये। उन सब के गपशप के कारण जो कोलाहल आरम्भ हुआ वह सदानन्द को असह्य हो उठा। ऊपर से कुटीर में जब तम्बाकू का धुआँ गूँजने लगा तब तो बेचारे सदानन्द का दम ही घुट गया। धीरे-धीरे एक बग़ल से होकर सदानन्द कुटीर से बाहर निकल आया।

मूसलाधार पानी बरस रहा था। शव बाहर पड़ा भीग रहा था। कुटीर के द्वार पर खड़े-खड़े सदानन्द उसी की ओर दृष्टि लगाए हुए था। एकाएक उसे ऐसा लगा मानो शव ने ज़रा-सी हरकत की है। कहीं यह प्रेत तो नहीं हो गया है?

भय किसे कहते हैं, यह बात सदानन्द प्रायः जानता ही नहीं था। अन्यथा वह श्मशानवासी होने का साहस कैसे कर सकता था? खड़े-खड़े वह अपनी घनी और बड़ी-बड़ी भौंहों के नीचे से आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा।

शव वास्तव में हिल-डुल रहा था। जो लोग शव लेकर आये हुए थे, वे सब कुटीर के भीतर स्वतन्त्र भाव से तम्बाकू पी रहे थे और बातचीत कर रहे थे। इधर सदानन्द द्वार पर खड़े-खड़े शव की यह अवस्था देख रहा था। परन्तु जिन्हें शव के सम्बन्ध में वास्तव में चिन्ता होनी चाहिए, उन्हें इस बात का ज़रा भी पता न था।

सदानन्द को जब निश्चित रूप से मालूम हो गया कि शव वास्तव में हिल-डुल रहा है, तब वह कुटीर से निकल पड़ा।

शववाहकों में से एक व्यक्ति ने पूछा—कहो बाबा जी, जाते कहाँ हो?

सदानन्द ने कोई उत्तर नहीं दिया। शव के पास जाकर उसने उसके मुख के ऊपर का वस्त्र हटा दिया। शव ने आँख खोल दी थीं। वृष्टि की जो धारा उसके मुँह में पड़ रही थी, उसे हाँफते-हाँफते वह पी रहा था। यह देख कर सदानन्द ने दोनों हाथ से शव की तिक्ती उठाई और तेज़ी से खींचते हुए वह उसे भीतर ले गया। शव के साथ में आए हुए लोग उसे ऐसा करने से रोकने के उद्देश्य से अप्रसन्नता-व्यंजक स्वर में बोल उठे—यह क्या बाबा जी, इस ज़रा-सी ही जगह में इसे भी क्यों घुसेड़ रहे हो?

सदानन्द ने इस बात पर कर्णपात नहीं किया। वह तत्परता-पूर्वक शव की शुश्रूषा करने में संलग्न हुआ। सभी लोगों ने विस्मयपूर्वक देखा कि शव ने चेतना प्राप्त कर ली है। अब वह उठ कर बैठना ही चाहता है। इस घटना के कारण वे लोग तो भय और विस्मय के मारे अभिभूत हो उठे। संन्यासी बाबा एक सिद्ध पुरुष हैं, उनके पुण्य-स्पर्श से शव में भी जीवन का संचार हो आता है, मृत व्यक्ति को भी जीवित कर देने की इनमें शक्ति है, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर उन सब को रोमांच हो आया। उन लोगों ने भक्तिपूर्वक महापुरुष की पद-धूलि मस्तक से लगाई। ज़रा ही देर में गाँव भर में इस बात की प्रसिद्धि हो उठी कि संन्यासी बाबा मरा

आदमी जिला सकते हैं। एक से दूसरे गाँव में और दूसरे गाँव से तीसरे गाँव में यह बात इतनी तेजी से फैली कि उस जँवार के सभी बालक, युवा, जरठ, नर-नारी सदानन्द के कुटीर पर आ-आ कर एकत्र होने लगे। वहाँ एक खासा अच्छा-सा मेला लग गया। जिन लोगों के घर में कोई बीमार था, वे ता उसके चरणों पर से मस्तक ही नहीं हटाना चाहते थे।

देखते ही देखते सदानन्द की ख्याति दावानल के समान व्याप्त हो उठी। प्रतिदिन ही कितनी दूर-दूर के गाँवों के लोग कई-कई दिन के मरे हुए मुर्दे लेकर आते। कितने ऐसे कोढ़ी आते जिनके अंग-अंग गल गए थे। वे सभी सदानन्द के कुटीर के द्वार पर धरना दिया करते थे। परिणाम यह हुआ कि उस निर्जन श्मशान-भूमि में बराबर मेला लगा रहने लगा। दूकानदार लोग भी आ-आ कर जमने लगे, इससे वहाँ एक अच्छा-सा बाजार लग गया। कितनी-कितनी जगहों के कितने-कितने लोग तो कितने प्रकार की मनौतियाँ करके संन्यासी महाराज के चरणों पर आकर पड़ने लगे। सदानन्द की किसी भी पीढ़ी में कोई वैद्य नहीं हुआ था। इधर संसार भर के रोगी आ-आ कर उस बेचारे को घेरने लगे। उन सब के करुण-क्रन्दन तथा आग्रहपूर्ण अनवरत अनुनय-विनय के कारण उसके कानों के परदे फटे जा रहे थे।

आरोग्य लाभ करने की कामना से आए हुए लोगों को खाली हाथ टालने का कोई उपाय तो था नहीं सदानन्द के पास, इससे उसके हाथ में जो कुछ आता, वही वह दे देता। सभी लोग उसकी दी हुई वस्तु का सेवन किया करते, ताबीज में मढ़ाकर उसे पहन लेते। विश्वास के प्रभाव से बहुतों का रोग भी दूर होने लगा। साथ ही साथ संन्यासी महाराज की कीर्ति और प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। जिन लोगों का रोग दूर न हो पाता वे दुगुने आग्रह के साथ सदानन्द के चरणों से लिपट जाते और कहते—स्वामी जी महाराज,

मुझसे कौन-सा ऐसा पाप हो गया है कि मेरे ऊपर महाराज की कृपा नहीं हुई ?

बेचारा सदानन्द खीझ उठा। कहा तो गृहस्थी छोड़ कर वह स्मशान से भाग आया था, कहाँ विश्व के रचयिता विधाता ने ऐसा मायाजाल फैलाया कि आज संसार भर की गृहस्थियाँ आकर उसके कुटीर के द्वार पर धरना देने लगीं। सदानन्द ने अनुभव किया कि इससे तो कहीं अधिक शान्ति मुझे अपने गाँव में, अपने घर में मिला करती थी। जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे कहीं अधिक आराम था, कहीं अधिक शान्ति थी। उसे वैराग्य से भी वैराग्य हो गया।

एक दिन विस्मयपूर्वक सब लोगों ने देखा कि बाबा सिद्ध पुरुष अन्तर्धान हो गये हैं। इससे सब हाय-हाय करने लगे। इधर सिद्ध पुरुष के अन्तर्धान होते ही स्मशान भूमि फिर स्मशान हो गई।

सुन्दरी

(१)

"दोहाई काज़ी साहब, आप इसका फ़ैसला कीजिए।" बग़दाद की बात है। काज़ी महीरुन अपने अदालत के कमरे में चुपचाप बैठे थे। इतने में उनका एकान्त-भङ्ग करती हुई दो रमणियाँ बिजली के से वेग से दौड़ती हुई उनके समीप आकर उपस्थित हुईं। दोनों ने एक साथ ही समान स्वर से कहा—दोहाई क़ाज़ी साहब, आप इसका फ़ैसला कीजिए।

दोनों रमणियों की रूप-रेखा तथा वेश-भूषा में आकाश-पाताल का अन्तर था। एक जितनी सुन्दरी थी, दूसरी उतनी ही अधिक कुरूपा थी। सुन्दरी जहाँ अपने अनुपम सौन्दर्य तथा बहुमूल्य वस्त्रों एवं आभूषणों के कारण मनुष्य-मात्र का हृदय अपनी ओर अना-

यास ही आकर्षित कर सकती थी, वहाँ कुरूपा के बेडौल तथा बीभत्स अङ्गों और दीन-मलिन वेश-भूषा को देखकर घृणा का दमन करना मानव-शक्ति से परे था।

सुन्दरी कुरूपा का हाथ पकड़े हुए उसे बड़े ज़ोर से खींच रही थी। उस समय वह ऐसी जान पड़ती थी, मानो पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा अमावस्या के घोर अन्धकार को लेकर पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ है।

क़ाज़ी साहब अपने बड़े-बड़े नेत्रों से दोनों रमणियों को कुछ क्षण तक ध्यान-पूर्वक देखते रहे। अन्त में अपनी लम्बी और सफ़ेद दाढ़ी खुजलाते हुए कहने लगे—क्या मामला है भाई, तुम दोनों क्यों लड़ रही हो?

सुन्दरी ने कहा—हुज़ूर, यह रमणी मेरे पति को चाहती है।

क़ाज़ी—क्या वह तुम्हारा विवाहित पति है?

सुन्दरी—जी नहीं, विवाहित नहीं है, किन्तु वाग्दत्त है।

सुन्दरी की बातें सुनकर क़ाज़ी साहब ने अपनी दृष्टि कुरूपा की ओर फेरी। स्वाभाविक तथा स्निग्ध भाव से उसकी ओर देख कर उन्होंने पूछा—तुम्हारे ऊपर जो अभियोग लगाया जा रहा है, क्या वह सच है?

क़ाज़ी की दृष्टि उधर जाते ही कुरूपा का मुँह नीचे हो गया था। उसने बहुत ही कोमल शब्दों में कहा—मुझे तो यह सब कुछ भी नहीं मालूम है।

क़ाज़ी ने संदिग्ध दृष्टि से सुन्दरी की ओर देखा। कुरूपा की बात समाप्त होते ही सुन्दरी का चेहरा तमतमा आया। उसकी दोनों आँखें जलने लगीं। पूँछ कुचल जाने पर सर्पिणी के समान क्रोध से काँपती हुई गरज कर वह कहने लगी—झूठी बात! क्या तूने अभी-अभी नहीं कहा था कि मियाँ जान रहमान के साथ मेरी शादी होगी।

"कहा था, परन्तु यह मेरी बात नहीं है, मैंने उन्हीं के मुँह से

६

सुना है। मुझे ज़रा भी इस बात का पता नहीं है कि उनके साथ तुम्हारी शादी होगी। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पिता बहुत बड़े धनी हैं। तुम एक धनी की लड़की हो, तिस पर बहुत सुन्दरी भी हो। इधर मैं! मेरे पास क्या है? न तो मेरे रूप है, न धन ही है। पराये के अन्न से मेरा पालन-पोषण हुआ है। फिर किस बिरते पर तुम्हारा मुक़ाबला करने का साहस कर सकती हूँ? रहमान मियाँ की प्रणय-पात्री होने की कल्पना तक करने का अधिकार मुझे कहाँ है। यह तो ईश्वर की इच्छा है, जो ऐसी बात मुँह से निकालने का मुझे अवसर मिला है। उसी की अनुकम्पा का फल है जो नेशा जैसी अकिञ्चन दासी पर मियाँ जी की कृपा-दृष्टि पड़ी है। परन्तु इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है, सुन्दरी लतीफ़ा!

सुन्दरी ने बड़े कर्कश स्वर से कहा—तू राक्षसी है। तेरे हृदय में कूट-कूट कर विष भरा है। अपना मतलब साधने के लिए ही तूने उस दिन अपने प्राण संकट में डाले थे। सोचा होगा कि शायद इसी तरह मियाँ के कोमल हृदय में तेरे प्रति दया का संचार हो जाय और वे तेरी तरफ़ झुक जायँ।

ये बातें सुन कर नेशा ज़रा उत्तेजित-सी हो उठी। उसने कुछ तीक्ष्ण स्वर से कहा—इतनी बड़ी आशा इस अभागिनी ने कभी स्वप्न में भी नहीं की लतीफ़ा! उनकी प्राण-रक्षा के लिए मैंने अपने प्राणों को संकट में अवश्य डाला, परन्तु उसका यह मतलब नहीं कि पुरस्कार के रूप में मैं उनके हृदय पर ही अधिकार कर लूँ। मुझ जैसी घृणित और दीन-हीन स्त्री का संसार में उपयोग ही क्या है? ऐसी दशा में इन निरर्थक प्राणों के बदले में एक सहृदय तथा उच्च व्यक्ति के जीवन की रक्षा के ही श्रेय से क्यों वञ्चित रहूँ। यही कारण था कि मियाँ को शेर के मुँह में पड़ते देख कर मैं स्वयं उसके सामने कूद पड़ी थी। मियाँ का जीवन कितना मूल्यवान है, उनके द्वारा संसार का कितना उपकार हो सकता है, यही सोच कर मैंने उनकी रक्षा के लिए इस तुच्छ शरीर को अर्पित किया था।

ईश्वर साक्षी है। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी बात की कामना नहीं थी। मेरा यह भी विश्वास था कि शेर के चंगुल से बचना असम्भव है। किसी दैवी शक्ति की ही प्रेरणा से मेरे इन निर्बल हाथों में बल आ गया था, जिससे मियाँ की रक्षा करके स्वयं भी बाल-बाल बच गई।

नेशा चुप हो गई। अपनी आभा से कमरे को जगमगा कर लतीफ़ा ने क़ाज़ी साहब से कहा—देखा हुज़ूर, कैसी बातें बना रही है?

क़ाज़ी ने कहा—तुम लोगों का मामला मेरी समझ में ज़रा भी नहीं आ रहा है, परन्तु जहाँ तक मेरी बुद्धि काम करती है, यह स्त्री निरपराध है।

"नहीं जनाब, आप इसकी माया को नहीं जान सकते। यह जादू जानती है। नहीं तो यह रूप जिसे देख कर दिन में भी डर मालूम पड़ता है, मियाँ जान के हृदय पर अधिकार कर लेता! इसने किसी मोहिनी शक्ति से ही मियाँ को भुला रक्खा है। हुज़ूर यह मुमकिन नहीं है कि लतीफ़ा जैसी सुन्दरी के प्रणय-पात्र हो कर भी मियाँ अपनी इच्छा से इस रूप पर कभी मुग्ध हो सकें। ऐसा करना तो स्वर्ग से एकदम नरक में गिरना है। या यों कहिए कि राजप्रासाद के शिखर से कूद कर एकदम विष्ठा की गन्ध से परि-पूर्ण कूप में गिरना है। असम्भव!

कहते-कहते सुन्दरी की आँखें लाल हो आईं। उसका सुन्दर कमल के समान चेहरा तमतमा आया। गर्दन टेढ़ी किये वह क़ाज़ी के सामने खड़ी रही।

क़ाज़ी साहब बड़ी देर तक गम्भीर भाव से सोचते रहे। अन्त में उन्होंने कहा—आदि से अन्त तक सारी बातें सुने बिना किसी निर्णय पर पहुँचना सम्भव नहीं है, अतएव तुम दोनों सारी घट-नाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। तभी मैं कुछ फ़ैसला कर सकूँगा।

सुन्दरी ने कहा—सुनिए हुज़ूर, मैं सारा क़िस्सा बयान कि देती हूँ। लगभग दो वर्ष हुआ, मैं और रहमान मियाँ, एक दूसरे से प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि हम दोनों का विवाह होगा। मेरे पिता जी तीर्थ यात्रा में हैं। उनके लौटते ही विवाह होने की बात थी। मेरे पित के और कोई सन्तान नहीं है। मैं ही उनके अतुलित वैभव की एक मात्र उत्तराधिकारिणी हूँ। रहमान भी बहुत धनी हैं। इसके सिव हम दोनों में हार्दिक प्रेम भी है। एक दिन हम लोग शिकार खेलने गये थे। लौटते समय एक शेर ने आक्रमण किया। मैं तो काव काट कर भाग आई, किन्तु मियाँ जी न भाग सकें। शेर उन प आक्रमण करना ही चाहता था कि नेशा न जाने कहाँ से आक बीच में कूद पड़ी। इसने मियाँ जी को ढकेल दिया और स्वयं उछ कर शेर के सामने खड़ी हो गई। क्रोध से पागल होकर वह जैसे इस पर झपटा कि मियाँ जी ने सँभल कर शेर पर गोली चला दी जिससे यह बच गई। उसी दिन से सुनने में आ रहा है कि इस साथ मियाँ का विवाह होगा। हुज़ूर, मियाँ से प्रेम करती आ र हूँ मैं इतने दिन से और विवाह होने जा रहा है इसके साथ। हुज़ इसका फ़ैसला करें।

क़ाज़ी साहब बड़ी देर तक गम्भीर भाव से सोचते रहे। अ में उन्होंने कहा—अच्छा, तुम दोनों आज के सोलहवें दिन साँझ आना। तब मैं तुम्हारा फ़ैसला कर दूँगा। मगर तुम अपना-अप नाम बताये जाओ।

सुन्दरी ने कहा—मेरा नाम लतीफुन्निसा है और इसका नेशा

(२)

चारों ओर हरे-भरे मैदान थे। चन्द्रमा की किरणों से भू ण्डल धवलित था। मैले-कुचैले चीथड़े लपेटे हुए एक रमणी धी धीरे चली जा रही थी। वह शान्त भाव से चुपचाप चली जा र थी। उसकी दृष्टि रास्ता छोड़ कर और किसी ओर नहीं जाती थी एकाएक किसी लता-कुञ्ज से निकल कर एक सुन्दर युवक रा

रोक कर उसके सामने खड़ा हो गया। युवक ने पुलकित कण्ठ से पुकारा—नेशा।

रमणी हाथ जोड़ कर स्थिर भाव से खड़ी हो गई। युवक ने फिर कहा—नेशा, प्राणाधिके!

रमणी कुरूपा नेशा थी और युवक रहमान मियाँ।

नेशा ने अपनी आँखें मूँद लीं। उसे ऐसा जान पड़ने लगा—मानो यह एक सुख-स्वप्न है। कहीं निद्रा भङ्ग होते ही सोने का यह स्वप्न टूट न जाय, जागने पर यह आनन्द किरकिरा न हो जाय। उसने बड़े जोर से आँखें बन्द कर लीं।

"निष्ठुरा नेशा, लोगों से सुना था कि तुम्हारा हृदय बहुत कोमल है। तुम्हारे हृदय की उस मधुरता ने ही एक दिन मुझे जीवन-दान किया था। अब फिर निर्दय होकर मुझे क्यों कष्ट दे रही हो नेशा? क्या मेरे हृदय को संतप्त करने में तुम्हें सुख मिलता है?"

काँपते हुए कण्ठ से नेशा ने उत्तर दिया—अपना जीवन देकर भी यदि आपको सुखी कर पाती तो मेरा यह अधम शरीर सार्थक हो जाता। किन्तु।

मियाँ ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—इसमें किन्तु की क्या बात है नेशा?

"मैं आप की बात पर सहमत नहीं हो सकती। आप जो कुछ कह रहे हैं, शायद उसे स्वयं भी नहीं जानते?"

खूब जानता हूँ नेशा! पारिजात के पुष्पों की माला मेरे सम्मुख पड़ी है। मैं उसे हृदय पर धारण करना चाहता हूँ। अमृत से भरा हुआ कटोरा मेरे हाथ में है। उसे होठों से न लगा कर क्या मैं फेंक दूँगा? नेशा, प्रियतमे, मेरा अविश्वास मत करो। विश्वास करो नेशा। मैं शपथ करके कह रहा हूँ कि इस हृदय में तुम्हारे अतिरिक्त और किसी को स्थान नहीं है।"

"हाय, किसकी बात पर अविश्वास करूँगी? जिसका असत्य

भी मेरे लिए ध्रुव सत्य है उसकी बातों पर अविश्वास करूँगी ?" उसने प्रकट रूप से कहा—दोहाई, मियाँ जी, बाँदी को इतनी बड़ी लालच न दिखलाइए। हृदय बड़ा दुर्बल है। मुझ जैसी भिखारिन पर आपने जो कृपा की है, संसार भर में इसकी तुलना नहीं है, मुझे आपसे इतनी आशा नहीं थी। किन्तु लतीफ़ा बीबी आपको चाहती हैं। आप उनसे प्रतिज्ञा भी कर चुके हैं। ईश्वर करे, आप उन्हें अर्द्धाङ्गिनी बना कर सुख से जीवन व्यतीत करें, और नेशा का अन्तःकरण यह सब देख-देख कर सुखी हो।

"उसका नाम मत लो नेशा! वह मुझसे प्रेम नहीं करती है। उसका प्रेम है मेरे रूप और वैभव से। यदि वह वास्तव में मुझसे प्रेम करती होती तो मैं उसके साथ कभी न अन्याय करता।"

"वह धनवती है, और रूपवती भी है।"

"आग लगे ऐसे धन में और ऐसे सौन्दर्य में। नेशा, वह सौन्दर्य अग्नि के समान शरीर को सन्तप्त करता है। मैंने वह सौन्दर्य प्राप्त कर लिया है जिससे शरीर को दाह नहीं पहुँचती, जो हृदय को शीतल करता है। लतीफ़ा का सौन्दर्य वाह्य सौन्दर्य है, वह चिरस्थायी नहीं है। नदी-तट के ज्वारभाटे के समान यौवन के साथ ही वह भी नष्ट हो जायगा। और हृदय का स्वाभाविक सौन्दर्य अपनी शीतल किरणों से चिरकाल तक संसार को शीतल करता है। नेशा, उस दिन मैं वास्तविक सौन्दर्य का अनुभव कर सका हूँ। उस दिन साँझ को रक्त से शरीर को लथपथ करके जब तुम मेरे सामने खड़ी थीं, तुम साक्षात् देवी के रूप में दिखाई पड़ रही थीं। तुम्हारा वह चित्र मैंने अपने हृदय के अन्तस्तल में अंकित कर लिया है। मैं उसी मूर्ति का ध्यान करता रहता हूँ। मेरा वह ध्यान भंग न होने देना नेशा! बतलाओ, क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार करोगी?

नेशा अभी तक मस्तक नीचा किये हुए खड़ी थी। मियाँ की बात समाप्त होते ही उसने कहा—शायद जनाब को मालूम होगा, उ

दिन लतीफ़ा बीबी मुझे क़ाज़ी साहब के यहाँ ले गई थीं। उन्होंने मेरे ऊपर दावा किया है कि यह मेरे पति को बहका कर अपने साथ विवाह करने जा रही है। क़ाज़ी ने सोलहवें दिन फ़ैसला करने को कहा है।

"यह तो और अच्छा हुआ। क़ाज़ी साहब को मैं ख़ूब जानता हूँ। वे बड़े ही चतुर और अनुभवी हैं। सत्य के विरुद्ध उनका निर्णय न होगा। मुक़दमे में जीत तुम्हारी ही होगी।"

नेशा मियाँ के दोनों पैर पकड़ कर बैठ गई। बड़ी ही नम्रता के साथ उसने कहा—आप मुझे क्षमा कर दीजिए। दूसरे के हृदय पर आघात पहुँचा कर मैं सुख नहीं भोगना चाहती। आपकी कृपा ही मेरे लिए सब कुछ है।

रहमान—पागल हो नेशा! मेरे लिए तुमने अपने आश्रय का परित्याग किया है, मेरे ही कारण इतनी बदनामी उठाई है, अब कहती हो कि तुम मुझे परित्याग कर दो?

नेशा—मैं निराश्रित अवश्य हो गई हूँ। साथ ही जिस दिन अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर मैंने आपकी रक्षा की थी, उस दिन से मेरे सम्बन्ध में बहुत सी अनाप-शनाप बातें भी कही जा रही हैं, परन्तु मेरा इस ओर ज़रा भी ध्यान नहीं है। क्या इस विशाल ब्रह्माण्ड के किसी भी कोने में मुझे स्थान नहीं मिलेगा? रही बात अपकीर्ति की, सो वह कितने दिन रह सकती है। मिथ्या अपकीर्ति कभी चिरस्थायी नहीं होती। यदि मेरे चरित्र में बल है तो यह सारी अपकीर्ति शरत्-काल के शुभ्र आकाश पर काले मेघ के समान जहाँ की तहाँ हो जायगी। मियाँ साहब, इस बात का मुझे ज़रा भी दुख नहीं है।

रहमान—नेशा, यह तो मैं जानता था कि तुम्हारा हृदय सुन्दर है, परन्तु इस बात का ज़रा भी पता नहीं था कि वह इतना विशाल और उच्च भी है। नेशा, जीवन-दात्री देवी, मेरे सन्तप्त हृदय को शीतल करो। मझ पर प्रसन्न होओ। इस जीवन में तो

मैं तुम्हें कदापि नहीं परित्याग कर सकता। अन्यथा ईश्वर के समक्ष मुझे दंड का भागी होना पड़ेगा, प्राण-प्रिये, मुझे अधिक कष्ट न दो। यह कहते-कहते रहमान मियाँ विह्वल हो गये। नेशा का हाथ पकड़ कर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया।

एकाएक लताओं का कुञ्ज कम्पित हो उठा। न जाने किसने व्यङ्गय-स्वर में कहा—मियाँ, जिस रमणी को तुमने इतने दिनों से वचन दे रक्खा है उसे परित्याग करने पर क्या ईश्वर स्वर्ग में तुम्हारे लिए कोई दूसरा स्थान बना रक्खेंगे ?

दोनों ही उत्कंठित होकर चारों ओर देखने लगे, किन्तु कहीं कुछ भी दिखाई न पड़ा।

(३)

ईश्वर, तेरी लीलायें देखते ही देखते मेरी यह दाढ़ी सफ़ेद हुई है। अब तक मैंने न जाने कितनी लीलायें देखी हैं, एक से एक नई और एक से एक आश्चर्यजनक ! इस पृथिवी पर तूने जिस किसी भी वस्तु की सृष्टि की है वह सभी सुन्दर है। सृष्टि का चरम विकास है मनुष्य का जीवन। जिस मनुष्य को तू अनुपम सौन्दर्य तथा अपरूप लावण्य से समृद्धिशाली बनाता है उसके हृदय में सुन्दरता का सञ्चार क्यों नहीं करता ? इसके विपरीत जिसका हृदय सुन्दर बनता है उसे वाह्य सौन्दर्य से क्यों वञ्चित करता है ? प्रभो, तेरी यह कैसी लीला है ? यदि मनुष्य का शरीर और हृदय दोनों सुन्दर होते तो रत्न और काञ्चन का संयोग हो जाता। वह संयोग कितना मनोहर होता, कितना पवित्र होता ! परन्तु ऐसा होता कहाँ है ?

क़ाज़ी अपने कमरे में बैठे सोच रहे थे। एकाएक चौंक कर उन्होंने नौकर को बुलाया। नौकर के पहुँचते ही उन्होंने उससे पूछा—मियाँ को सूचना दे दी है ?

"जी हाँ।"

"अच्छा, तो दोनों स्त्रियों को भेज दो।"

थोड़ी ही देर में लतीफ़ा और नेशा क़ाज़ी साहब के सामने उपस्थित की गईं। उन दोनों ने घुटने टेक कर सलाम किया। क़ाज़ी ने गम्भीर भाव से कहा—आज तुम लोगों का फ़ैसला होगा। तुम लोग शान्त होकर बैठ जाओ। मैं ध्यानपूर्वक सोचता हूँ कि रहमान मियाँ किसके स्वामी हैं।

रमणियाँ चुपचाप बैठी थीं। क़ाज़ी साहब की ओर दोनों ही उत्सुक भाव से देख रही थीं। एकाएक किसी के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी, मानो असह्य यन्त्रणा से व्यग्र होकर कोई रो रहा था।

एकाएक क़ाज़ी साहब का ध्यान भंग हो गया। वे उत्सुक भाव से इधर-उधर ताकने लगे। रोने की आवाज़ सुनकर रमणियाँ भी चकित हो उठी थीं। नेशा ने साहस करके कहा—हुज़ूर, कोई रो रहा है। बेचारा न जाने किस क्लेश में पड़ा है?

क़ाज़ी—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ। शायद यहीं आस-पास से ही यह शब्द आ रहा है। परन्तु यहाँ मेरे पड़ोस में तो कोई रहता नहीं। कोई यात्री होगा। बेचारा संकट में पड़ गया है। चलो, देखें तो क्या मामला है?

नेशा—हाँ हुज़ूर, ज़रूर चलना चाहिए। कहीं सहायता के ही लिए न रोता हो।

क़ाज़ी साहब चल पड़े। उनके पीछे-पीछे नेशा चली। लतीफ़ा उस ओर क़दम बढ़ाने के लिए तैयार नहीं थी। परन्तु इन लोगों को जाते देख कर विवश होकर उसे भी चलना ही पड़ा।

क़ाज़ी साहब के स्थान के समीप ही किसी पेड़ के नीचे एक व्यक्ति घायल पड़ा था—अचेत-सा था। उठने या बात-चीत करने की शक्ति उसमें नहीं थी।

नेशा तुरन्त ही घायल के पास पहुँच गई। उसने बहुत गम्भीर स्वर में कहा—हुज़ूर, बेचारा बड़े संकट में पड़ा है। इसकी रक्षा के लिए कोई उपाय करना चाहिए।

क़ाज़ी साहब ने दोनों रमणियों की ओर देख कर कहा—तुम

लोग इसे किसी तरह मेरे घर तक ले चलो। वहीं उचित व्यवस्था की जायगी।

घायल को उठाने के लिए नेशा झटपट तैयार हो गई। लतीफ़ा की ओर संकुचित भाव से ताक कर उसने कहा—आओ बहन, इसे किसी तरह ले चलें। इसकी पहले कुछ व्यवस्था हो जायगी तभी मुक़द्दमें का फ़ैसला हो सकेगा।

घायल को उठा कर ले चलने के लिए क़ाज़ी साहब ने लतीफ़ा की ओर संकेत किया। पर वह कुछ करने को तैयार नहीं थी। एक प्रतिष्ठित घराने की महिला होने से शव के समान पड़े हुए किसी अपरिचित घायल को उठा कर ले चलना वह अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझती थी। तो भी अपने मन का भाव दाब कर वह चुपचाप खड़ी रही। क़ाज़ी की आज्ञा उसने अनसुनी सी कर दी। परन्तु नेशा के मुँह से यह बात सुनते ही उसका क्रोध एकदम से भभक उठा—उसने गरज कर कहा—नेशा, तू जानती नहीं कि मैं कौन हूँ। तेरे समान क्या मैं भी कुली-कबाड़ी का काम करती फिरती हूँ, जो इतने बड़े आदमी को कन्धे पर उठा कर ले चलूँ। मालूम पड़ता है, तेरा मिजाज बिगड़ गया है, जो इस तरह की बातें करती है। नहीं तो तुझ लौंडी की क्या हिम्मत थी कि ऐसी बात मुँह से निकालती।

नेशा चुप रह गई। उसे चूँ तक करने का साहस न हुआ। तब क़ाज़ी ने कहा—कोई बात नहीं है। नेशा, आओ हम तुम ही मिल कर इस आदमी को घर तक ले चलें। पैर की ओर तुम पकड़ लो। सिर को थाम कर मैं तुम्हारे साथ अच्छी तरह चल सकूँगा।

ठीक ऐसा ही हुआ। रास्ते भर नेशा उस व्यक्ति की आरोग्य-कामना से ईश्वर की स्तुति करती आई। क़ाज़ी साहब के स्थान पर पहुँचते ही घायल एक कोमल शय्या पर लिटा दिया गया और उसकी चिकित्सा का आयोजन होने लगा।

दीपक लेकर लोगों ने घायल को जब देखा तब सब के सब

सन्न हो गये। यह क्या ? वे तो स्वयं रहमान मियाँ थे। बहुत घायल थे, चोट प्रायः सांघातिक थी। नेशा पागल की तरह चिल्ला उठी। उसने कहा—हा भगवन्, आज कौन सा पाप किया था जिसके कारण मियाँ की यह दशा देखनी पड़ी। क्षमा करो, प्रभो, मेरे जीवनेश्वर की रक्षा करो।

रहमान के दोनों पैरों को उठा कर नेशा ने अपनी गोद में ले लिया और उनके निष्प्रभ मुँह की ओर ताक कर रुँधे हुए स्वर से कहने लगी—हृदयेश्वर! मेरे सर्वस्व! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ? किस नर-पिशाच ने तुम्हारे जैसे दयालु तथा पुण्यात्मा पर हाथ चला कर अपनी पापवासना को चरितार्थ किया है। मियाँ का मुँह ताक-ताक कर नेशा उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। किन्तु उत्तर कौन देता ? मियाँ को तो मुँह खोलने तक की शक्ति न थी।

शय्या के पास बैठ कर लतीफ़ा भी अपने भावी पति तथा प्रणय-पात्र की ओर ताकती हुई बार-बार पछता रही थी। कभी वह उसकी नाड़ी देखती, कभी छाती पर हाथ रखती, और कभी आहत स्थान पर दृष्टि डाल कर चुपचाप ताकती रह जाती। किन्तु उसकी आकृति पर किसी प्रकार की व्याकुलता या विषाद का आभास तक न था।

क़ाज़ी ने कहा—केवल पछताने से कुछ काम न होगा। तुम लोगों में से एक आदमी जाकर यदि किसी चिकित्सक को बुला लावे तो मियाँ की हालत सुधर सकती है। यह कह कर वे लतीफ़ा की ओर उत्सुक दृष्टि से ताकने लगे। लतीफ़ा ने उत्तर दिया—क्या करूँ हुज़ूर, स्वामी को ऐसी दशा में छोड़ कर मैं कहाँ जाऊँ। इसके अतिरिक्त एक प्रतिष्ठित कुल की कन्या होकर अकेले इधर-उधर जाना भी तो अच्छा नहीं लगता।

लतीफ़ा की बात समाप्त भी न होने पाई थी कि नेशा कुछ दूर निकल गई। वह वेग से चिकित्सक के घर की ओर दौड़ी चली जा रही थी। उसे इस तरह जाते देख कर लतीफ़ा ने कहा—बाँदी

शायद चिकित्सक के ही यहाँ जा रही है। देखते हैं हुज़ूर, इस समय वह कैसा प्रेम प्रदर्शित कर रही है। अभी तक उसे पूर्ण आशा है कि मियाँ के साथ उसी का विवाह होगा।

क़ाज़ी ने अन्यमनस्क भाव से कहा—आशा पर ही मनुष्य का जीवन अवलम्बित है लतीफ़ा।

मियाँ ने ज़रा सा काँख कर करवट बदली। क़ाज़ी साहब ने कहा—लतीफ़ा आओ, तब तक हमीं लोग मियाँ की चिकित्सा का कुछ प्रयत्न करें। तुम ज़रा सी आग सुलगा कर लाओ तो। सेंकने से घाव की पीड़ा बहुत कम हो जायगी।

लतीफ़ा स्वयं इतना क्लेश सहने के लिए तैयार नहीं थी। किन्तु क़ाज़ी की आज्ञा से लज्जावश उसे उठना ही पड़ा। लकड़ियों में दियासलाई लगा कर वह कुछ क्षण पंखे से धौंकती रही, किन्तु अन्त में पंखा रख कर वहाँ से हट गई। उसने कहा—हुज़ूर, धुएँ के मारे तो आँख फूटी जा रही है। आग सुलगाना मेरे बस के बाहर है। दो-चार पैसे देने से कोई सुलगा देता तो अच्छा ही था, नहीं तो नेशा आकर सुलगावेगी। आग वग़ैरह फूँकने का मुझे अभ्यास नहीं है। क़ाज़ी साहब, यह सारी करतूत नेशा की ही है। उसी के षड्यन्त्र से किसी ने मियाँ पर आघात किया है। उसका विश्वास था कि आज के मुक़द्दमे में हार जाऊँगी। इसीलिए अपनी ईर्ष्या-वृत्ति को चरितार्थ करने के लिए यह सारी रचना रची है। ख़ैर, इस बार मियाँ किसी तरह उठ खड़े होंगे तो मैं पिशाचिनी को उसके किये का फल दिये बिना न रहूँगी। अपने पाप को छिपाने के ही लिए वह इतनी दौड़-धूप कर रही है क़ाज़ी साहब।

क़ाज़ी ने लतीफ़ा को इन बातों का कोई उत्तर न दिया। वे मुस्करा कर उसकी ओर देखते रह गए। इतने में नेशा चिकित्सक को लेकर आ गई।

चिकित्सक ने मुस्करा कर क़ाज़ी की ओर देखा। उसने बड़े आदर से उन्हें अभिवादन किया। उचित उत्तर देकर क़ाज़ी ने रोगी

की चिकित्सा का आदेश देकर नेशा से पूछा—चिकित्सक साहब का घर तो बहुत दूर है। तुम इतनी शीघ्रता से इन्हें कैसे ला सकी हो?

नेशा ने बड़ी नम्रता से कहा—हुज़ूर, ईश्वर की कृपा थी। ये दवा का बक्स लेकर किसी की चिकित्सा करने जा रहे थे। संयोग-वश रास्ते में भेंट हो गई। तब बहुत अनुनय विनय करके यहाँ तक ले आई हूँ। इन्होंने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया है। ईश्वर इनका कल्याण करे।

चिकित्सक ने ध्यान से रोगी की परीक्षा की। फिर गम्भीर भाव से कहा—अधिक रक्त बहने से रोगी अचेत हो गया है। रक्त इतनी मात्रा में घट गया है कि हृदय की गति बन्द हो जाने का भय है। ऐसी दशा में इसका बचना असम्भव हो जायगा।

नेशा अधीर भाव से चिकित्सक की ओर देखती रह गई। चिकित्सक ने अपने आप ही फिर कहा—रोगी की रक्षा का केवल एक उपाय है। यदि किसी सबल व्यक्ति के शरीर का रक्त निकाल कर इसके शरीर में प्रविष्ट किया जाय तो अवश्य इसकी प्राण-रक्षा हो सकती है। अन्यथा बचने का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता।

क़ाज़ी ने कहा—परन्तु यह तो बड़ी कठिन बात है। भला अपने शरीर का रक्त कौन निकालने देगा? क्यों लतीफ़ा?

चिकित्सक ने उत्तर दिया—सम्भव है, धन के लोभ से कोई निर्धन व्यक्ति अपना थोड़ा-सा रक्त निकाल लेने दे।

लतीफ़ा की ओर संकेत करके क़ाज़ी ने कहा—तुमने अभी ही कहा था कि मैं प्राण देकर भी मियाँ साहब की रक्षा करने के लिए तैयार हूँ। इधर चिकित्सक साहब की बातें भी सुन रही हो। मियाँ की प्राण-रक्षा के लिए मनुष्य के रक्त की आवश्यकता है। परन्तु भविष्य में तुम जिसकी पत्नी होना चाहती हो उसके शरीर में किसी अपरिचित दरिद्र का रक्त प्रवेश करना क्या तुम पसन्द करती हो?

"हुज़ूर, और उपाय ही क्या है? भला कौन आदमी अपने

शरीर का रक्त निकालने देगा। मियाँ के घर पर सूचना दी जाय तो सम्भव है कोई तैयार हो जाय।"

"उनके घर का यदि कोई न तैयार हो ?"

"न सही, मियाँ जी को रुपये की कोई चिन्ता नहीं है। एक की जगह चार ख़र्च करने पर कोई न कोई तैयार हो हो जायगा। कितने ही ऐसे आदमी हैं जो एक-एक पैसे के लिए तरह-तरह का क्लेश उठा रहे हैं। उन्हें यदि कुछ रुपये मिल जायँगे तो अपने शरीर का थोड़ा सा रक्त देने के लिए अवश्य तैयार हो जायँगे।"

क़ाज़ी ने घूम कर नेशा की ओर देखा। वह दाहना हाथ फैलाये हुए घुटनों के बल चिकित्सक के सामने बैठी हुई थी। रक्त निकालने के लिए वह अपने बक्स से आवश्यक यन्त्र आदि निकाल रहा था।

"नेशा, मियाँ जी के शरीर में प्रविष्ट करने के लिए तुम अपने शरीर का रक्त दोगी ?"

"हुज़ूर, इससे बढ़ कर मेरे लिए और कौन सी सौभाग्य की बात हो सकती है ?"

"परन्तु तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि थोड़े से रक्त से काम न चलेगा, क्योंकि मियाँ के शरीर से जितना रक्त निकल गया है, उतना पूरा किए बिना उनके बचने की सम्भावना नहीं है। इधर उतना रक्त निकाल लेने पर तुम्हारे प्राणों की भी आशंका है। ऐसी दशा में क्या तुम मियाँ के लिए जीवन-दान करने को तैयार हो ?"

"मुझ अपराधिनी को इससे बढ़ कर और कौन सी उच्च आशा हो सकती है ?"

नेशा स्थिर भाव से बैठी रही। चिकित्सक ने अपने अस्त्रों की भली-भाँति परीक्षा की और उसके हाथ पर छुरी चलाने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु नेशा की मुखाकृति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। दृढ़ भाव से वह चुपचाप बैठी रही। छुरी का आघात

हाथ पर पड़ने ही को था कि क़ाज़ी ने उसे रोक कर मुस्करा कर कहा—ख़ैर, अब आवश्यकता नहीं है। लतीफ़ा की ओर संकेत करके उन्होंने कहा—लतीफ़ा, धर्म और न्याय के अनुसार नेशा ही रहमान मियाँ की पत्नी होने की अधिकारिणी है। वही उनकी वास्तविक सहधर्मिणी है।

"असम्भव है, जीते जी मैं इस निशाचरी के साथ मियाँ का विवाह कदापि न होने दूँगी। वे मुझसे आज से दो वर्ष पहले प्रतिज्ञा कर चुके हैं। इतने दिन का सम्बन्ध आसानी से नहीं तोड़ा जा सकता।"

"उद्धत नारी, तेरे साथ मियाँ का केवल दो वर्ष का सम्बन्ध है, किन्तु नेशा की आत्मा तो जन्म-जन्मान्तर से सम्बद्ध है। अन्यथा इतना त्याग सम्भव नहीं था। इसका सम्बन्ध अटूट है। कोई भी शक्ति इसे भिन्न नहीं कर सकती। जाओ, अपना काम देखो, मियाँ की आशा छोड़ दो। नेशा के ही साथ अब इनका विवाह हो सकेगा।

क्रोध के मारे लतीफ़ा का मुँह लाल हो गया। कर्कश स्वर से उसने कहा—अन्याय है। सर्वथा अन्याय है। नेशा स्त्री नहीं, पिशाचिनी है। इसकी माया सब पर काम कर जाती है। कहते-कहते वह उठ कर खड़ी हो गई। उसके मुख का आवरण हट गया। लाल-लाल कपोलों पर पसीने की बूँदें दिखाई पड़ने लगीं, जाँघ तक लटकती हुई वेणी हिलने लगी और ललाट पर की नसें तन गईं। उसने कहा—यह अन्याय मुझसे न सहा जायगा। अपमानित होकर जीने में धिक्कार है। इस अँगूठी के नग में विष है, इसी की सहायता से मैं अभी आत्महत्या करती हूँ। उस जन्म में पिशाचिनी नेशा और इस धर्मद्रोही क़ाज़ी की करतूत का बदला लूँगी।

लतीफ़ा ने तुरन्त ही अगूठी की नग होंठों से लगा लिया। नेशा चकित होकर देखती रही। अभी तक वह अचेत-सी थी। किन्तु लतीफ़ा को अँगूठी का विष मुँह में डालते देख कर दौड़ पड़ी, और तुरन्त ही अँगूठी उसके मुँह से निकाल ली। किन्तु लतीफ़ा पर

विष बहुत कुछ काम कर गया था। उतनी देर में ही वह अचेत होने लगी थी। नेशा उसका मस्तक गोद में लेकर बैठी रही।

क़ाज़ी ने कहा—रहमान मियाँ, अपनी वाञ्छित आदर्श-हृदया नेशा को हृदय से लगा लो, भगवान् करे, इस अतुल सम्पत्ति के अधिकारी होकर तुम अपने जीवन का सुखमय बना सको।

चिकित्सक ने कहा—ईश्वर ने क़ाज़ी साहब को प्रखर बुद्धि देकर इस पृथ्वी पर भेजा है। चाहे कैसी भी जटिल समस्या हो, उसका हल ये अवश्य कर देते हैं।

× × ×

रहमान मियाँ के विवाह के दिन किसी पगली ने आकर पति-पत्नी को आशीर्वाद दिया। उसे देखते ही नेशा उठ पड़ी, और उसने उसे छाती से लगा कर बड़े आदर से अपने पास बैठाया।

पगली सुन्दरी लतीफ़ा थी।

बलिदान

(१)

सारा दिन बड़े कड़ाके की गर्मी पड़ने के बाद साँझ होने पर धीमी-धीमी वायु चलने लगी। उसके झकोरों से सामने वाले नारियल के पत्ते झिरझिरा कर हिलने लगे। चक्रवर्ती जी के शयनागार का द्वार ज़ोर से खोलकर एक पचीस वर्ष की युवती बाहर निकली और वहीं खड़ी हो गई। इधर-उधर झाँक कर उसने ऊँचे स्वर से पुकारा—'कन्नू, ओ कन्नू।'

युवती को किसी प्रकार का उत्तर न मिला। उसने द्वार पर आकर देखा तो सदर दरवाज़ा खुला था। वहीं पर खड़ी होकर उद्विग्न भाव से वह इधर-उधर ताकने लगी। इतने में एक दस-बारह वर्ष

की बालिका गाढ़ी लाल साड़ी पहने हुए आकर दरवाज़े के सामने खड़ी होगई और कहने लगी—"क्या घाट जाओगी मौसी ?"

युवती ने उत्तर दिया—'जाती तो परन्तु अभागा लड़का न जाने कहाँ चला गया, मिलता ही नहीं। कहीं खोह खन्दक़ में गिर तो नहीं गया ?"

बालिका ने कहा—"गिरा-गिराया कहीं नहीं। अभी तो मैं उसे छदामी के घर पर देखे चली आ रही हूँ, उसके पोते और पोती के साथ खेल रहा था।"

"इस अभागे का जैसा रूप है, वैसे ही भगवान ने इसे गुण भी दिए हैं," कह कर युवती गली में चली गई और वहीं खड़ी होकर फिर कहने लगी—"ब्राह्मण के घर में तो पैदा हुआ है परन्तु चमार-पासी को छोड़कर और किसी से भी इसकी नहीं बनती। जब देखो यह चाण्डाल छदामी ही के घर पहुँचा रहता है। कहीं अम्मा को मालूम हुआ तो मुझे भी चार बातें सुनावेंगी। रात-दिन चमार के यहाँ तो डटा ही रहता है, कहीं उसके यहाँ पानी-वानी भी न पी आता हो ?"

युवती का नाम सरोजिनी था। वह उसी गाँव की लड़की थी। इससे किसी से उसे लज्जा करने की आवश्यकता न थी। उसे तो कभी घूँघट भी नहीं काढ़ना पड़ता था—"शैली आ और मेरे साथ चल" कहते-कहते वह बालिका का हाथ पकड़ कर खींचती हुई चलने लगी। बालिका ने हिचक कर कहा, "मुझे देरी हो जायगी मौसी, अम्मा ने मुझे जल्दी लौटने को कहा है।"

"क्यों, शायद आज तेरा दुलहा आने वाला है ?"

यह सुनते ही बालिका का मुँह लाल हो गया। इस बात का कुछ भी उत्तर न देकर वह वहाँ से चलने लगी।

"अच्छा जा, मैं अकेली ही चली जाऊँगी।"

सरोजिनी शैली का हाथ छोड़ कर अकेली ही जाने लगी। छदामी का घर अधिक दूर न था। उसके घर के पास पहुँचते ही

उसने देखा तो उसका चार वर्ष का लड़का कन्नू एक छोटे से बकरी के बच्चे को नर्म-नर्म घास खिला रहा था। छदामी का पोता घास काट-काट कर उसके पास रखता जाता था। और उसकी पोती अपने पैर का घूँघुरु बकरी के बच्चे को पहिनाने का प्रयत्न कर रही थी। बेचारा बकरी का बच्चा अपने इस शृङ्गार के लिए बार-बार आपत्ति कर रहा था परन्तु किसी प्रकार भी उसे छुटकारा न मिला। चट-चट दो-चार तमाचे लगा कर सरोजिनी अपने लड़के को घसीटती हुई घर की ओर लेकर चली। लड़के की चिल्लाहट से सारा रास्ता गूँज उठा। घर में पहुँचते ही सरोजिनी अपनी अम्मा के सामने पड़ गई। वे बरामदे में बैठ कर राम-राम जप रही थीं लड़की को देखते ही उन्होंने कहा—"बच्चे को इतना पीटती क्यों है रे ?"

"मारूँ न तो क्या करूँ ? यह चाण्डाल किसी दिन पानी में डूब जायगा तो हाथ मलकर रह जाना पड़ेगा। तालाब के किनारे बैठ कर कीचड़ से खेल रहा था।"

"मैं तालाब पर नहीं गया था। मैं बकरी का बच्चा लूँगा"—ऊँ ऊँ ऊँ करके कन्नू फिर चिल्लाने लगा। सारा भेद खुल जाने के भय से सरोजिनी ने उसे और भी पाँच-सात थप्पड़ जमाए, जिससे कि उसकी घिग्घी बँध गई। क्या तू रात-दिन बच्चे को पीटती रहती है ? दो-चार तो हैं भी नहीं, नहीं तो न जाने क्या करती। इस बेचारे को तो तुम ऐसे ही पीट कर मारे डालती हो, कह कर वृद्धा फिर अपना काम करने लगी। माता की बातें सुनते ही सरोजिनी कन्नू को वहीं छोड़कर अपने शयनागार में चली गई।

सरोजिनी का विवाह वहाँ से समीप ही दूसरे गाँव में हुआ था। विवाह के बाद कुछ दिन तक तो वह पूजा के समय हर साल अपने पिता के यहाँ आया करती थी, परन्तु दो-एक लड़के-बच्चे होने के बाद उसका धीरे-धीरे पिता के यहाँ का आना-जाना कम हो गया। इस बार वह चार-पाँच वर्ष के बाद आई थी। इतने दिनों में उसका जीवन न जाने कितने सुख-दुःख की धाराओं में बह चुका था; तीन

बच्चों में से दो विदा हो चुके थे, एक ही बालक बच रहा था, उसके लिए भी वह रात-दिन देवी-देवता मनाती रहती है। क्या भगवान कन्नू को भी इस अभागिनी के साथ न रहने देंगे! वह इसी एक मात्र बालक के ऊपर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने पर तैयार थी अपने दुर्भाग्य पर कभी-कभी उसे बड़ा दुःख होता। वह कन्नू को सदा छाती से लगाकर बैठी रहती, घर पर किसी तरह भी वह माँ के पास से न हटने पाता क्योंकि घर पर इसी एक बालक के लिए चार-पाँच नौकरानियाँ तैनात थीं, डेहरी पर पैर रक्खा नहीं कि उसे पकड़ कर वे लोग माता के पास उपस्थित कर देती थीं।

मामा के यहाँ आने पर कन्नू इस विपत्ति से बच गया। यहाँ सरोजिनी को भी इतना अवकाश न था कि वह रात-दिन उसे पकड़ कर बैठी रहे। लड़कपन की सखियों तथा भौजाइयों आदि के साथ बातचीत करने या ताश-पासा आदि खेलने में ही उसका अधिकांश समय बीत जाता था। दरिद्र परिवार में नौकर-चाकर की तो कोई बात ही न थी ऐसी दशा में माता से अवकाश मिलने पर कन्नू का स्वतन्त्र हो जाना स्वाभाविक ही था।

अपनी इस नई स्वाधीनता का कन्नू ने सदुपयोग भी खूब किया था। गाँव भर में जितने बालक-बालिकायें थीं, चाहे वे शूद्र की हों या भले आदमी की, सभी से उसने मित्रता कर ली थी। छदामी चमार का घर उसे सब से अधिक प्रिय था। वहाँ उसकी जोड़ी के दो लड़के-लड़कियाँ तो थीं ही, एक बकरी का बच्चा और एक पिल्ला भी था, उन सबों में बकरी का बच्चा उसे बहुत प्रिय था। अपने नाम के साथ मिलाकर उसने उसका नाम रक्खा था "पन्नू"। अपना नया कोट भी उसे दे डाला था, परन्तु सरोजिनी अलबत्ता उसे छीन लाई थी। वह तो उसे अपना जूता भी देना चाहता था, परन्तु बेचारा करता क्या पन्नू के चारों पैर में उसके दो पैर के जूते पूरे नहीं पड़ते थे।

कन्नू अपने मामा के यहाँ के ब्राह्मणत्व से बहुत तंग आगया

था। जब कभी वह छदामी के घर में पकड़ा जाता, उसे घर जाकर तुरन्त स्नान करना पड़ता। उसे बार-बार पकड़ कर स्नान कराना और गंगाजल छिड़क कर शुद्ध करना सरोजिनी का मानो नित्यकर्म सा हो गया था। उसे स्वयं छूतछात की इतनी चिन्ता न थी, परन्तु मौसी, बुआ आदि के मारे उसे जात बचाने की चिन्ता रात-दिन लगी रहती थी। वह कन्नू को प्रायः रोक रखने की चेष्टा करती, परंतु एक तो वह इतने दिनों के बाद नैहर आई, फिर भी बहुत थोड़े दिन के लिए, इतने दिनों पर खेलने-कूदने का समय मिला—इधर सखी-सहेलियों की भी कमी नहीं थी। ऐसी दशा में कन्नू को छुटकारा मिल जाना कठिन न था।

पूजा के इने-गिने दिन बीत गए। अब तो सरोजिनी को घर लौटना ही था। किसी तरह कह सुन कर चार दिन के लिए आई थी। इसने पतिदेव से दृढ़ रूप से प्रतिज्ञा की थी कि ननद जी के जाने से पहले मैं अवश्य आजाऊँगी। उसकी ननद भी बहुत कहने-सुनने पर चार-छः दिन के लिए उसका घर सम्हालने को राज़ी हो गई थी।

बिदाई के समय कन्नू को बड़ी कठिनता से छदामी के यहाँ से घसीट कर लाया गया। उसने पन्नू को दोनों हाथों से ज़ोर से पकड़ रखा; किसी तरह भी नहीं छोड़ता था। छदामी ने कहा—"ले जाने दो बिटिया, बच्चे को रुलाओ मत, इसे (बकरी के बच्चे को) भी लेती जाओ।"

सरोजिनी ने कहा—"इसे क्यों ले जायँ भाई, लड़के तो मचलते ही रहते हैं, इनकी बातों पर कहाँ तक ध्यान दिया जायगा। लो तुम अपना बकरी का बच्चा ले जाओ।" सरोजिनी ने बड़े ज़ोर से उसके हाथ से बच्चे को छीन कर छदामी को दे दिया।

गाड़ी पर बैठते समय सरोजिनी की माँ ने कहा—"देखो बिटिया, बच्चे को इतना मारा-पीटा न करो, कहीं लग जायगा तो अच्छा न होगा। एक बात और है, तुम ब्राह्मण की लड़की हो, तुम्हें

छत्तीसों जाति से छुआछूत करना ठीक नहीं है। इससे बड़ा पाप होता है।"

(२)

घर लौटने पर कन्नू न जाने कैसा अनमना हो गया दिन झुकने के बाद सरोजिनी उसे दूध पिलाने गई तो वह चुपचाप घर के एक कोने में बैठा था। माँ ने घबरा कर पूछा—"क्या तेरी तबीयत खराब है क्या रे ?" कन्नू ने माथा हिला कर सूचित किया कि उसकी तबीयत खराब नहीं है।

"तब कुप्पा जैसा मुंह फुलाये क्यों बैठा है ?"

कन्नू यकायक पिनपिना कर रो पड़ा आँखें मीजते-मीजते उसने कहा कि मुझे भूख लगी है।

सरोजिनी ने दूध की कटोरी उसके मुँह के पास बढ़ा कर कहा कि यदि भूख लगी है तो मुँह खोल कर बोल नहीं सकता ? ऐसे लड़के के मुंह में आग लगे जो काम लगने पर भी नहीं बोलता, दिन-रात गौनाई बहू जैसा मुँह लटकाये बैठा रहता है।

कन्नू ने दो घूँट दूध पीकर कटोरी खिसका दी। सरोजिनी ने कर्कश स्वर से कहा—"इतने ही में अजीर्ण हो गया।"

"दूध खराब है मैं न पीऊँगा।"

"ख़राब नहीं तेरा सिर है। वहां से लौटते ही इस लड़के को न जाने क्या हो गया रात दिन नाक ही बहती रहती है।"

दूध की कटोरी लेकर सरोजिनी वहाँ से चली गई। उसके पति जैसे घर पर आये उसने कहा कि लड़के की तुम कुछ भी परवा नहीं करते हो दिन पर दिन वह न जाने कैसा होता जा रहा है। कुछ खाता-पीता भी नहीं फिर भला वह कैसे बचेगा ? एक ही लड़का है।

"तो तुम क्या करती हो ? मैं बाहर भी मरता रहूँ और घर में लड़का-बच्चा भी देखूं ? यदि तुम मेरा आफ़िस का काम-काज कर दो तो मैं बड़े मजे में लड़के को खिला लूँगा।"

सरोजिनी ज़रा-सी सहानुभूति पाने की आशा से आई थी, ऐसा

मुँहतोड़ ज़वाब पाकर वह चुपचाप वहां से चली गई। उसकी आँखें डबडबा आईं। उस समय उसका हृदय बहुत ही दुखी था। अपने इस क्षोभ का कारण वह स्वयं भी न जानती थी, किन्तु प्रधानतः इसके दो ही कारण हो सकते थे या तो पति से किया गया अपमान या पुत्र के अमंगल की आशङ्का।

कन्नू के खाने-पीने की व्यवस्था किसी तरह भी ठीक न हुई। पहले वह सदा आठ बजे साँझ को सो जाता और आठ बजे सबेरे उठता, यही उसका प्रतिदिन का नियम था; परन्तु आजकल रात में चार-पाँच बार रो-रो कर उठ बैठता। उसकी पीठ पर थपकियाँ लगा कर, नारियल का लड्डू खिलाकर और कहानियाँ सुना-सुना कर बड़ी कठिनता से सुलाना पड़ता था।

काली पूजा को कई दिन बाक़ी थे, एक दिन प्रातःकाल सरोजिनी ने देखा कन्नू का शरीर गरम है। इतनी ही छोटी अवस्था में सरोजिनी को न जाने कितने सुख-दुःख सहने पड़े थे, अपने बच्चों के वियोग में उसे न जाने कितना बिलखना पड़ा था। कन्नू की बीमारी से उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने निद्रित स्वामी को ज़रा खोद कर जगा दिया और कहा—"कन्नू को ज्वर हुआ है।"

उसके पति ने कहा—"अच्छी तरह से देख लिया है न?"

सरोजिनी ने भरी हुई आवाज़ से कहा—मैंने तो अच्छी तरह देख लिया है, अब एक बार तुम भी देख लो।"

कन्नू के पिता उठकर बैठ गए और उसे भली भाँति देखा। बिस्तरे पर से उठकर कपड़े पहनते-पहनते उसने कहा कि देखना, उसे तुम अभी कुछ भी न खिलाना, मैं डाक्टर साहब को बुला लाता हूँ।

वे घर से बाहर निकल पड़े। भय की एक काली छाया सरोजिनी की आँख के सामने मानो सारे संसार को धीरे-धीरे तिरोहित कर रही थी। अल्पावस्था में उसे दुख का खूब अनुभव हुआ था। शोक की अग्नि-परीक्षा से भगवान ने उसे वञ्चित नहीं किया। यही कारण

था कि रोगी पुत्र के पास बैठकर वह दुःख प्रकाशित करने का भी साहस नहीं करती थी।

सरोजिनी के पति वीरेन्द्र तुरन्त ही डाक्टर को लेकर पहुँच गए। बालक को भली भाँति देख कर उसने दवाई का नुसखा लिखा और अपनी फ़ीस लेकर राही हो गया। जाते समय वीरेन्द्र ने कुछ पूछा था उसका उसने अँग्रेजी में उत्तर दिया था। डर के मारे सरोजिनी का हृदय और भी अधिक व्याकुल हो उठा। पति के लौटते ही उसने उत्सुकता से पूछा कि डाक्टर साहब ने क्या कहा था?

वीरेन्द्र ने उत्तर दिया—"कहते क्या? समय अच्छा नहीं है इसलिए बच्चे को सावधानी के साथ रखने को कहा है।" कहीं स्त्री कुछ और भी न पूछ बैठे, इस भय से वे शीघ्र ही घर से बाहर निकल गए।

सरोजिनी ने उस दिन न तो स्नान किया और न घर का कुछ काम-काज ही किया। सौभाग्यवश उस समय भी उसकी ननद अपनी ससुराल नहीं गई थी, अन्यथा घर के और लोगों को भी उसके साथ ही साथ उपवास करना पड़ता।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही वीरेन्द्र थर्मामेटर से बालक के ज्वर की परीक्षा करने लगे। सरोजिनी ने उत्कण्ठित होकर पूछा—"क्या ज्वर कुछ कम हुआ है।"

वीरेन्द्र ने मस्तक हिला कर कहा कि अभी नहीं कम हुआ। अल्पावस्था से ही मृत्यु का बार-बार स्वागत करने के कारण इन पति-पत्नी के मुँह से बात तक नहीं निकलती थी। बेचारे रात-दिन मन मारे बच्चे के पास डटे रहते।

थोड़ी देर के बाद आँखें मींज कर कन्नू ने कहा—"अम्मा, लाई चबाऊँगा।"

बच्चे के शरीर पर हाथ फेरते-फेरते सरोजिनी ने कहा—"अभी लाई न चबाओ बेटा थोड़ा-सा दूध पी लो, लाई दूँगी। वाह रे राजा बेटा।"

कन्नू को राजा बेटा होने की तनिक भी अभिलाशा न थी। उसने अपना मस्तक हिलाते हुए रोकर कहा—"नहीं, मैं दूध न पीऊँगा, लाई चबाऊँगा। मुझे मामा के यहाँ ले चलो, वहाँ लाई है।"

सरोजिनी ने चुमकार कर कहा—"अच्छा बेटा मैं अभी लाई भुना लाती हूँ, तुम अभी ज़रा दूध पी लो।"

केवल लाई से ही कन्नू सन्तुष्ट होने वाला न था। उसने दो-एक घूँट पीकर कटोरी ठेल दी और कहा कि मैं मामा के यहाँ चलूँगा।

सरोजिनी—"अच्छा, मामा के यहाँ जाना, पहले अच्छे तो हो जाओ।"

कन्नू की आरोग्यता का कोई भी लक्ष्य न था। उसका ज्वर बढ़ने लगा सर्दी भी हो गई और खाँसी भी आने लगी। सरोजिनी के रोने और बार-बार अनुरोध करने से वीरेन्द्र शहर के एक अनुभवी डाक्टर को बुला लाए। वह बहुत सी औषधियों का प्रबन्ध करके चला गया। परन्तु रोगी को किसी प्रकार का लाभ होने की आशा न दिखाई पड़ी। बालक का स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता गया। बोलने और रोने तक की भी उसमें शक्ति न रह गई।

गाँव में एक होम्योपैथिक डाक्टर थे। सरोजिनी रोते-पीटते उनके पास गई। रोग का इतिहास सुन कर उन्होंने कहा—"मैं दवा दे सकता हूँ परन्तु डाक्टरी दवा के साथ यह कुछ भी लाभ न पहुँचा सकेगी।"

सरोजिनी ने कहा—"मैं डाक्टरी दवा कदापि न खाने दूँगी आप ही की दवा दी जायगी।"

घर पर आकर सरोजिनी ने देखा तो वीरेन्द्र कन्नू को औषधि खिला चुके थे। दो अच्छी औषधियों को सेवन करने से अधिक उपकार की आशा से चुपके से वह भी दवा खिला दी। एक बार नहीं बल्कि कई बार कन्नू की दोहरी चिकित्सा हो चुकी थी। परन्तु किसी भी दवा से उपकार न हुआ। ज्वर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

एक दिन सबेरे सरोजिनी ने एक बड़ा बुरा सा स्वप्न देखा।

उसे देखते ही वह रोकर जाग उठी। पास ही एक चारपाई पर उसका पति भी सोया था। उसे ज़रा सा खोद कर उसने कहा—"बच्चे को देखना, मैं अभी काली जी के मन्दिर से आ रही हूँ।"

उसके पति ने कहा—"अभी तुम कहीं भी न जाओ, पहले बच्चे को दूध वग़ैरह पिला दो।" उसकी बातों पर कान न दे कर सरोजिनी वहाँ से निकल पड़ी।

उसे लौट कर आने में बड़ी देर लगी। अपने चित्त को एकाग्र करके वह देवी से न जाने क्या-क्या प्रार्थना करती रही परन्तु उसे देर-सबेर का कुछ भी ज्ञान न रहा। वह यहाँ तक बेसुध हो गई कि उसे अपने रोगी बच्चे के पथ्य के भी प्रबन्ध करने की याद न आई।

बड़ी देर के बाद सरोजिनी घर लौटी। वीरेन्द्र उससे बहुत ही रुष्ट थे। उसे देखते ही कर्कश स्वर से कहने लगे—"अभी तक क्या करती थी। बेचारा बच्चा भूख के मारे छटपटा रहा था। तुम्हें किसी बात की सुध रहती है।"

डर के मारे काँपते-काँपते सरोजिनी ने दबी आवाज़ से कहा—"क्या करूँ, काली माई के सामने कब से नाक रगड़ती रही, बहुत कुछ मान-मनौती की है कि मेरे भैया को भी भीख दे जायँ। उसे कुछ खिलाया है?"

वीरेन्द्र ने अप्रसन्न भाव से कहा—"अगर न खिलाता तो अब तक इस बेचारे की न जाने क्या दशा होती। जितना दूध पिलाया था आधा तो मेरे ही हाथ पर डाल दिया। अगर कुछ हो तो पानी पीने को दो, कब से मर रहा हूँ।"

सरोजिनी की प्रायः सारी रात बैठे-बैठे कटी थी। कभी-कभी उसे नींद आती अवश्य थी परन्तु दुःस्वप्न की चिन्ता के सामने भला नींद के पाँव कैसे अड़ सकते थे। कभी तो वह खड़ी होकर निद्रित पुत्र के शरीर पर हाथ फेरती और कभी खिड़की के पास जाकर बाहर की ओर झाँकती, इसी तरह सारी रात कट गई। अरुण के प्रकाश से पूर्व का आकाश कुछ-कुछ साफ़ होने लगा। उस समय न जाने

क्यों उसके हृदय का भार बहुत कम हो गया। बड़ी उतावली के साथ कन्नू के पास जाकर उसने उसका माथा टोया। उसका ज्वर बहुत कम मालूम पड़ा। परन्तु सरोजिनी को विश्वास न हुआ। विपत्तियों का आघात सहते-सहते उसका हृदय इतना निर्बल हो गया था कि छोटे-मोटे सुख को उस पर स्थान ही नहीं मिल सकता था। उसने एक बार फिर बालक के शरीर को टोया। इस बार भी ज्वर बहुत कम मालूम पड़ा। उसने उत्सुकता के साथ वीरेन्द्र के पास जाकर उन्हें जगाया और कहा कि कन्नू के शरीर को ज़रा टोओ तो।

वीरेन्द्र विस्मित होकर तुरन्त ही उठ बैठे। उन्होंने व्याकुलता-मय शब्दों में पूछा—"क्यों, क्या बात है? क्या ज्वर बढ़ गया है?"

सरोजिनी—"क्या रोज़-रोज़ बढ़ता ही रहेगा? आज कुछ कम मालूम पड़ रहा है, ज़रा देखो तो सचमुच कम हुआ है?"

वीरेन्द्र थर्मामीटर लेकर बालक के ज्वर की परीक्षा करने लगे। सरोजिनी शीशे की नली को बड़े ध्यान से देख रही थी। आशा तथा आशंका, दोनों ही पारी-पारी से उसके हृदय पर अपना अधिकार जमा रही थीं। मानो उसी पर उसके जीवन-मरण का दारोमदार था। थर्मामीटर को निकाल कर वीरेन्द्र बड़ी देर तक लालटेन के सामने ध्यान पूर्वक देखते रहे। इससे सरोजिनी की आशङ्का और भी बढ़ी। उसने गम्भीर भाव से पूछा—"क्यों, ज्वर उतरा नहीं क्या? बत-लाते क्यों नहीं?"

वीरेन्द्र ने स्त्री के कातरतापूर्ण मुखमण्डल को देखकर कहा—"तुम इतना घबराती क्यों हो? इतने दिनों से घबरा-घबरा कर देख तो रही हो, कुछ लाभ होता है। यह सब लड़कपन छोड़ो। दुख में धीरज धरना चाहिए। रोने-गाने से कोई लाभ नहीं है। फिर घब-राने की बात ही क्या है? कन्नू का ज्वर प्रायः उतर गया है? यदि मेरी बातों पर विश्वास न हो तो देख लो। "सरोजिनी ने पति के हाथ से थर्मामीटर लेकर देखा तो सचमुच ज्वर उतर गया था। संध्या-समय के बिछाये हुए बिछौने पर वह इतनी देर के बाद जाकर

लेटी। उसके हृदय की सारी आशङ्का आँसू के रूप में निकल-निकल कर बिछौने को भिगोने लगा। वीरेन्द्र के मुँह से एक भी बात न निकल सकी, वे वहीं बैठ कर पत्नी के शरीर पर हाथ फेरने लगे।

कन्नू का ज्वर सचमुच उतर गया। अब उसने धीरे-धीरे बात-चीत करना, खेलना, मचलना तथा खाने-पीने के लिए उत्पात करना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक वह बिछौने पर कूदने की भी चेष्टा करने लगा। सरोजिनी अभी तक अकेली ही तीन आदमियों का काम करती आ रही थी, रात्रि भी अधिकांश समय तक जागती रहती थी परन्तु फिर भी उसे थकावट नहीं मालूम पड़ती थी। परन्तु अब मानो उसकी सारी शक्तियाँ यकायक अन्तर्हित हो गईं। प्रातःकाल शय्या से उठने की भी उसे इच्छा न होती थी। सारा दिन निद्रा घेरे ही रहती। रसोईं में वह चूल्हे के सामने बैठ कर झूमती रहती। कहीं तरकारी में जीरे के बजाय हींग छोड़ देती, कहीं दुबारा नमक छोड़ देती। जल्दी के कारण उसे किसी बात का ध्यान न रहता। उसकी यह दशा देख कर वीरेन्द्र ने कहा कि अब तुम रसोई में न जाया करो. किसी दिन आग में जल जाओगी तो बड़ा अनर्थ होगा। मैं तारिणी के जेठ से कह कर उसकी बड़ी बहू को ठीक कर आया हूँ। बेचारी विधवा औरत है, रात दिन ससुराल वालों की तरह तरह की बातें सुनती रहती है, वहाँ से छुटकारा मिलने पर उसे भी कुछ शान्ति मिल जायगी और तुम्हें भी आराम मिल जायगा। डाक्टर ने एक बार कन्नू को वायु-परिवर्तन करवाने को कहा था, परन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उससे बढ़ कर तुम्हीं को वायु-परिवर्तन का आवश्यकता पड़ गई है।

हवा बदलने की आवश्यकता न पड़ी। कन्नू का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा। अब तो सरोजिनी को सारा दिन उसे पकड़ते ही बीतता, अन्यथा वह द्वार पर जाकर इधर-उधर कूदने लगता। इधर रसोईं-पानी से छुट्टी मिल जाने के कारण सरोजिनी को भी खूब अवकाश मिल जाता था। अब तो कन्नू के उपद्रव से खीझ कर कभी-

कभी उसे पीटने को भी उद्यत हो जाती परन्तु कन्नू के शरीर के पास आते ही उसका हाथ रुक जाता। वह सोचती कि यह भी तो बेचारा चलूचलू था यदि थोड़ा भी अन्ट-सन्ट होता तो इस अभागिनी माँ को जलाने वाला भी कोई न रह जाता। कन्नू सदा की भाँति पीठ झुका कर मार खाने को तैयार हो जाता और पीछे से बड़े ज़ोर से चिल्लाने को भी उद्यत हो जाता। परन्तु सरोजिनी का चपत जब बीच में रुक जाता तो चकित होकर माता की ओर देखता ही रह जाता।

इसी तरह कई दिन बीत गये। एक दिन सरोजिनी ने वीरेन्द्र से कहा कि कान में तेल डाल कर बैठे तो हो ? परन्तु जो मुख्य कार्य है क्या उसे भूल गये हो।

वीरेन्द्र ने कहा—"असली काम क्या है ?"

सरोजिनी—"काली माई के सामने जो मनौती कर आई हूँ उसे तो पूरी कर देनी चाहिए न ? आगामी अमावस्या को ही उसे कर देना ठीक है।"

बिना कुछ कहे सुने ही वीरेन्द्र ने स्वीकृति दे दी। उस दिन सवेरे उठते ही एक कटोरी दूध पी कर कन्नू बाहर आया और आनन्द में मग्न होकर चिल्लाने लगा, अम्मा ओ अम्मा, देखो पन्नू आया है यह सुनते ही सरोजिनी बड़ी उतावली के साथ घर से निकली। बकरा खरीदने के लिये आदमी भेजा गया था वह, न जाने किस समय द्वार पर बाँध गया था यह उसे पता न था। लड़के की चिल्लाहट से सरोजिनी निकल कर बाहर आई और बकरे को ध्यानपूर्वक देख कर वहीं बैठ गई। कन्नू उसे बड़े ज़ोर से पकड़ कर बैठ गया। वह कभी तो घास खिलाता कभी उसके शरीर पर हाथ फेरता और कभी उसे गोद में उठाने का भी प्रयत्न करता परन्तु अन्त में उस उद्योग में निष्फल होना पड़ता।

बच्चों का यह भाव देख कर सरोजिनी को बड़ी चिन्ता हुई। वह मन ही मन सोचने लगी कि इसके हाथ से बकरे को छुड़ाना बहुत ही कठिन हो जायगा। इधर छुड़ाये बिना भी काम नहीं चल

सकता था क्योंकि जो वस्तु देवी के प्रति लाई गई है तो उसे उन्हीं के चरणों में अर्पण करना पड़ेगा। फिर भी यह सब कुछ कन्नू के ही कल्याण के लिए तो हो रहा है फिर उसे कुछ कष्ट ही होगा तो हानि क्या है।

लड़के को भुलाने के लिए उसने कहा—हट बेवकूफ नहीं तो। यह पन्नू है? पन्नू क्या इतना बड़ा है?

लड़के ने अवज्ञापूर्वक हँस कर कहा—"वाह यह पन्नू ही तो है, तुम समझती हो कि मैं उसको पहचानता नहीं? देखो उसके चारों पैरों में सफ़ेद दाग़ थे। वे सब दाग़ बने हुए हैं। सरोजिनी भी यह बात जानती थी; पन्नू की आकृति इस बकरे से मिलती-जुलती थी। लड़के को भुलावा देने के ही लिए उसने ऐसा कहा था परन्तु सारी चाल व्यर्थ हुई।

कन्नू की बदौलत उस दिन किसी को भी किसी तरह का झंझट नहीं उठाना पड़ा। वह सारा दिन पन्नू को छोड़ कर एक मिनट के लिए भी कहीं नहीं गया। बकरे के स्नान तथा भोजन के लिए वह ऐसे ऐसे प्रयत्न करने लगा कि वह चिल्ला-चिल्ला कर सारे मुहल्ले को कम्पायमान करने लगा। रात्रि में जब सरोजिनी शयनागार में गई तो उसने देखा कि उसकी शय्या पर कन्नू के पास पन्नू भी विराजमान है। इस बार तो कन्नू को दो-चार चपत भी खाने पड़े परन्तु इतने पर भी वह शान्त न हुआ। पन्नू के साथ-साथ वह भी बरामदे की ओर चला। अन्त में विवश होकर सरोजिनी को उसी कमरे में पन्नू के भी रहने का प्रबन्ध करना पड़ा। सरोजिनी चार-पाई पर लेट गई परन्तु उसे बड़ी देर तक नींद न आई। वह मन ही मन सोचती थी कि कन्नू के हाथ से बकरे को छुड़ाना तो टेढ़ी खीर है। फिर देवी की बलि कैसे दी जायगी। बड़ी उधेड़-बुन के बाद उसने निश्चय किया कि बड़े तड़के उठ कर इसे किसी पड़ोसी के घर में बाँध आवेंगे और समय आने पर उसी ओर से काली जी के मन्दिर में पहुँचा देंगे।

सरोजिनी उठी तो बड़े तड़के परन्तु उसका सारा प्रयत्न व्यर्थ हुआ। वहाँ उसे कन्नू पन्नू में से कोई भी न दिखाई पड़ा। सरोजिनी ताड़ गई कि कन्नू अवश्य बकरे को कहीं चराने ले गया होगा। उसने पति को जगा कर उससे सारा हाल कहा और स्वयं दरवाज़े पर जाकर इधर-उधर झाँकने लगी। इतने में एक आदमी ने आकर कहा कि पण्डा जी कह रहे हैं कि पूजा का समय हो गया है। शीघ्र सामग्री लेकर चलो। सरोजिनी ने उसे उत्तर दिया कि चलो हम अभी आ रहे हैं।

सरोजिनी ने उससे कह तो दिया परन्तु पूजा की मुख्य सामग्री थी बकरा, उसका कहीं पता न था। नौकर से उसे खोजने को कह कर वह अन्य सामग्रियों को एकत्रित करने के लिए भीतर चली गई। इतने में द्वार पर से उसे बकरे और बालक की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। दौड़ती हुई आकर उसने देखा कि पन्नू अपनी सारी शक्ति लगा कर बकरे को पकड़े हुए है और नौकर उसे उससे छोड़ाने का प्रयत्न कर रहा है। सरोजिनी ने बड़ी उतावली से दौड़ कर कन्नू को पकड़ लिया। नौकर बकरे को लेकर चला गया। कन्नू मारे क्रोध तथा अपमान के थर-थर काँपने लगा और गला फाड़-फाड़ कर रोते-रोते माँ के शरीर में चिपट गया। कभी वह उसके शरीर को नोचता, कभी हाथ-पैर पटकता और कभी चिल्लाता और कहता कि मैं अपने पन्नू को काटने न दूँगा।

न जाने किसने कन्नू से पन्नू के काटने की बात कह दी थी। सरोजिनी बार-बार उसे गोद में लेने का प्रयत्न करती और कहती कि तुझसे किसने कहा है कि पन्नू को काटने ले जा रहे हैं? उसे नहलाने ले जा रहे हैं, मैला रहने से बीमार हो जायगा।

कन्नू हाथ पटक-पटक कर कहने लगा कि तुम झूठ बोल रही हो। मुझे भुलावा देकर उसे काटोगी। मैं उसे नहीं दूँगा। इतने में नौकर उसे लेकर नौ-दो ग्यारह हो गया।

सरोजिनी को मन्दिर जाने में बड़ी देरी हो गई। वह कन्नू को

किसी प्रकार भी न शान्त कर सकी। अन्त में उसे ननद के हाथ में सौंप कर वह किसी प्रकार चली गई। तब तक बलिदान नहीं हुआ था। उसके पहुँचते ही कार्य आरम्भ हो गया।

पूजा करके सरोजिनी जब घर की ओर लौटी तो उसे मन ही मन बड़ी चिन्ता हो रही थी। वह यही सोचती कि घर पर न जाने क्या हो रहा है। द्वार पर पहुँचते ही उसे कन्नू का चिल्लाना सुनाई पड़ा। घर में उसने देखा कि कन्नू किसी प्रकार न तो स्नान करता है और न भोजन ही करता है। मन्दिर जाने के लिए वह बड़े जोर से दौड़ा था, इससे चौखट में टकरा जाने से गिर पड़ा और माथे में चोट आ गई। कन्नू को चारपाई पर लेटा कर उसकी बुआ उसके शरीर पर हाथ फेर रहा थी। कन्नू के माथे पर भीगे हुए कपड़े की पट्टी बँधी थी, परन्तु फिर भी उसे पार करके रक्त की धारा बह रही थी।

डर के मारे सरोजिनी का हृदय काँप उठा। अभी जो रक्त की धारा वह मन्दिर में देख आई है मानो वही उछल कर कन्नू के मस्तक में लग गई है। एक जीव के कल्याण के लिए जो रक्तपात हुआ उसका फल भी पहले-पहल रक्तपात हुआ। उसके नेत्रों में आँसू भर आए वह देवी के चरणों में बार-बार प्रार्थना करने लगी—'अबोध बालक के अपराध पर ध्यान न देना माता, उसने बेसमझे अपमान किया है। उसका किसी प्रकार अमङ्गल न हो।"

वीरेन्द्र कहीं घूमने गए थे। घर लौटते ही स्त्री को रोती देख कर उन्होंने उत्सुकता के साथ पूछा—"अब क्या हुआ?"

सरोजिनी ने उत्तर दिया—"घर में जाकर देखो।" वीरेन्द्र चुपचाप भीतर चले गये। और तुरन्त ही लौटकर कर्कश स्वर से कहने लगे—"लड़के को ज्वर हुआ है। तुमको डाक्टर बुलवाने का भी ज्ञान नहीं है। घर में दो-दो नौकर हैं, एक मजदूरिन है, किसी को भी डाक्टर के यहाँ भेज देती।"

सरोजिनी—(दबी आवाज से) "क्या ज्वर हो आया?"

वीरेन्द्र ने फिर उसी प्रकार कर्कश स्वर से कहा—"तुम्हें अभी

तक यह भी नहीं मालूम है। तब फिर क्यों रोने बैठी हो! जाओ बच्चे के पास बैठो, मैं डाक्टर बुलाए लाता हूँ। सभी तो बुद्धिमान बन जाते हैं बीमार बच्चों के हाथ से बकरा छीन कर उसे रुलाने बिना काम ही नहीं बनता था।"

सरोजिनी ने रोते-रोते कहा—"देवी के नाम जो चीज़ निकाल दी गई, उसे दिये बिना भी तो कुशल नहीं था।"

"अच्छा-अच्छा अब देने से ही देखते हैं कितना कुशल होता है," कह कर वीरेन्द्र मुँह लटकाये हुए डाक्टर के यहाँ चले गए।

थोड़ी ही देर में डाक्टर साहब आकर पहुँच गये। उन्होंने गंभीर भाव से कहा—"फिर रिलेप्स हो गया? यह तो बड़ा बुरा हुआ। इनफ़्लूएञ्ज़ा अच्छे-अच्छे के छक्के छोड़ा देता है।"

वीरेन्द्र बच्चे की सेवा-सुश्रूषा करने लगे। परन्तु न तो वह किसी तरह दवा खाता और न शान्तिपूर्वक लेटा ही रहता। उसने रो-रो कर और छटपटा-छटपटा कर घर के प्रायः सभी लोगों को हैरान कर डाला। उसका ज्वर भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

तीसरे दिन बड़े तड़के उसने रोकर कहा—"पन्नू को ला दो।"

वीरेन्द्र ने बच्चे के मस्तक पर हाथ फेर कर कहा—"अच्छा बेटा, तुम अच्छे हो जाओ तो पन्नू को ला दूँगा।"

कन्नू ने पिता का हाथ हटा कर कहा—"नहीं, तुम न लाओगे, झूठ बोल रहे हो। तुम लोगों ने उसे काट डाला है।"

सारी रात जागते रहने से सरोजिनी बहुत क्लान्त हो गई थी। उस समय वह सोई थी। स्वप्न में उसने देखा कि मानो देवी द्वार पर खड़ी होकर कह रही है—"बड़ी देर हो गई, बलि कहाँ है?"

वीरेन्द्र के भयाकुल स्वर से सरोजिनी जाग कर उठ बैठी। उसके हाथ का खिलौना उस समय किसी अनजान मार्ग से निकल चुका था। जो कोट बड़े प्रेम से वह पन्नू को देने गया था, आज उसी को पहन कर घर से सदा के लिए विदा हो गया।
